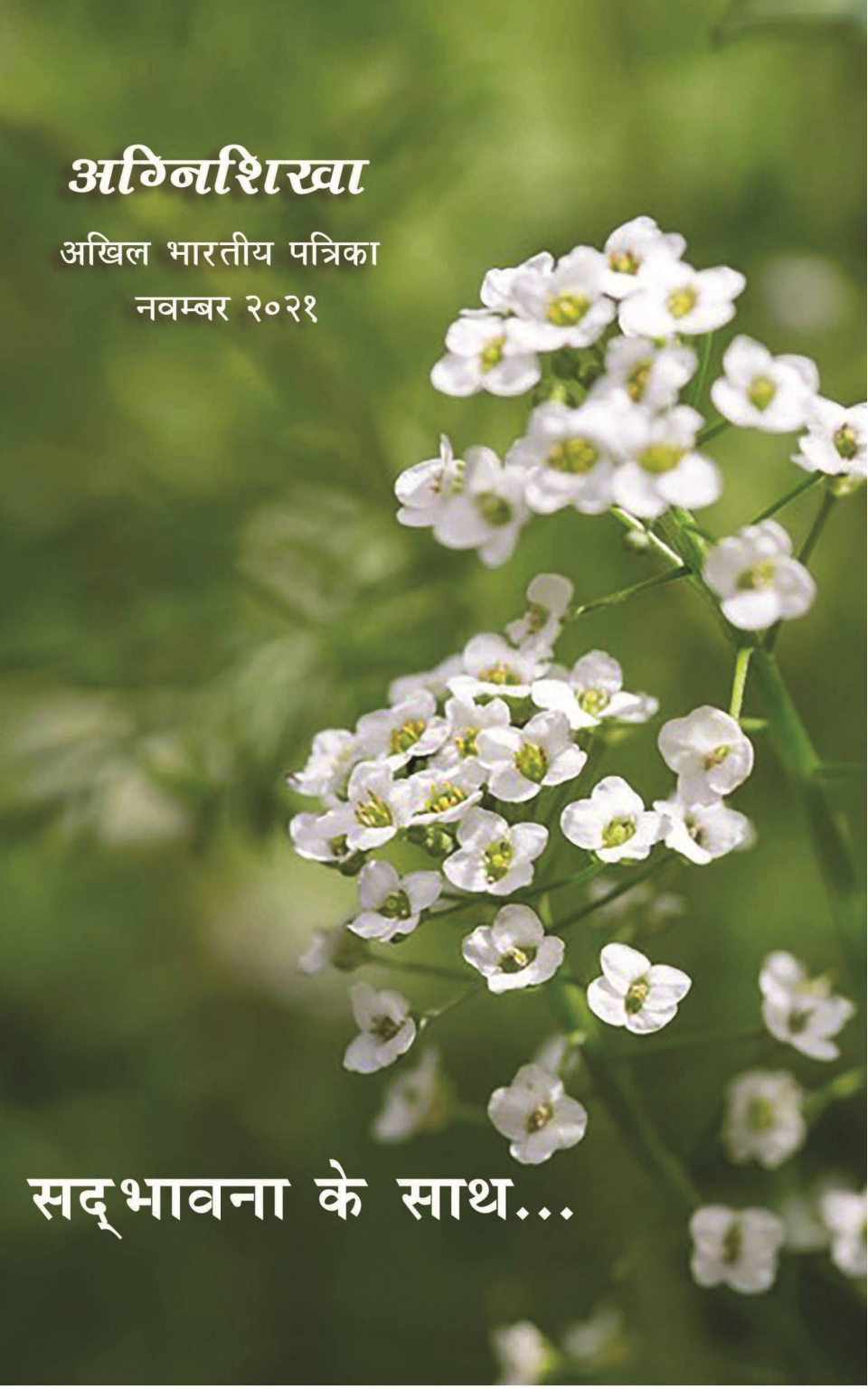

# अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका

नवम्बर २०२१



सद्‌भावना के साथ...

# विषय-सूची

## सद्‌भावना के साथ...

*(श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ के वचन)*


| | |
|---|---|
| सन्देश/सम्पादकीय | ३ |
| सद्‌भावना और प्रगति | ५ |
| सद्‌भावना तथा साधना | ९ |
| सद्‌भावना तथा मानव-सम्बन्ध | १६ |
| सद्‌भावना तथा सामुदायिक जीवन | १९ |
| सद्‌भावना और मानवता | २१ |
| सद्‌भावना और शिक्षा | २४ |
| सद्‌भावना तथा शरीर | २६ |
| सद्‌भावना, एक पथ-प्रदर्शक संकल्प | ३० |
| मनोभावों की शृंखला | ३७ |


### 'पुरोधा'


| | | |
|---|---|---|
| दैनन्दिनी | | ५० |
| भोला, उर्फ़...! | वन्दना | ५४ |
| प्रफुल्लता | 'श्रीमातृवाणी' से | ५८ |


*देदीप्यमान सूर्य क्षितिज से ऊपर उठ रहा है। यह तुम्हारे प्रभु हैं जो तुम्हारी ओर आ रहे हैं।*

*समस्त जगत् जाग उठा है और उनकी भव्यता के सम्पर्क के आनन्द में अँगड़ाई ले रहा है।*

*उभरती हुई, खुलती हुई धरती की तरह, बढ़ते हुए पेड़ की तरह, खिलते हुए फूल की तरह, गाते हुए पक्षी की तरह, प्रेम करने वाले मनुष्य की तरह उनका प्रकाश तुम्हारे अन्दर प्रवेश करे और हमेशा बढ़ती हुई, विस्तृत होती हुई प्रसन्नता में चमक उठे। यह प्रसन्नता स्थिर रूप से आगे बढ़ती जाये जैसे आकाश में तारे बढ़ते हैं।* **—श्रीमाँ**

# सन्देश

... सद्भावना की भेंट के रूप में किया गया कार्य ही एकमात्र वह कार्य है जो सचमुच मूल्यवान् है। **—श्रीमाँ**

*सम्पादकीय :* जैसे-जैसे हम पूर्णयोग के इस चुनौतीभरे पथ पर अपनी पूरी लगन और पूरे साहस के साथ आगे बढ़ते हैं, वैसे-वैसे पग-पग पर हमसे दर्जनों माँगें की जाती हैं—निष्कपटता, नम्रता, समता, अभीप्सा, त्याग, समर्पण इत्यादि कितने ही सद्गुणों को अपने दामन में समेटने की माँग होती है... इनमें से एक बहुत बड़ा गुण है—सद्भावना। लेकिन इसका सचमुच अर्थ क्या है और हमारी साधना और हमारे जीवन में इसका क्या स्थान है? यह एक ऐसा शब्द है जिसका उपयोग हम बात-बात में, बहुत सहज रूप में करने के शायद आदी हो गये हैं, लेकिन वास्तव में यह अपने अर्थ में बहुत शक्तिशाली और अपनी क्रिया में सचमुच रूपान्तरकारी है। यह वह आधारशिला है जिस पर जगत् और हमारे जीवन में आने वाले लोगों के प्रति हमारा मनोभाव टिका रहता है।

सद्भावना के बिना हम पारस्परिक मानव-क्रियाओं और उनसे उत्पन्न अहंकारों के जंजाल में फँसे रहेंगे। सद्भावना के साथ न केवल हम सम्भवनीय भँवर से बाहर निकल आने का सुअवसर पा लेंगे बल्कि हमारा हृदय अधिक प्रदीप्त, अधिक परोपकारी तथा सामञ्जस्यमय, अधिक दानशील और समावेशी, अधिक प्रोत्साहक और कृतज्ञ बन जायेगा—जिन प्रभु को हम स्वयं को समर्पित करने की इच्छा रखते हैं उनके प्रति हम सद्भावना-भरी कृतज्ञता से ओत-प्रोत हो जायेंगे—ये सभी गुण हैं वे कड़ियाँ जो प्रभु की ओर बढ़ने के हमारे मार्ग में एक के बाद एक जुड़ती चली जाती हैं।

श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ के सद्भावना-विषयक वचनों का संकलन है हमारे इस अंक में।

*श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ*

**साहसिक सद्भावना**

*प्रतिकूल तथा निरुत्साहित करने वाली अवस्था से नहीं घबराती, ठोस तथा दृढ़ाग्रही होती है।*

और फिर प्रगति के लिए अभीप्सा भी अवश्य होनी चाहिये : जो कुछ हम हैं, जैसे हम हैं, जो कुछ हम करते हैं, जो कुछ हम जानते या समझते हैं कि हम जानते हैं, उससे सन्तुष्ट नहीं होना चाहिये; बल्कि कुछ अधिक के लिए, किसी अधिक अच्छी वस्तु के लिए, एक महत्तर ज्योति, एक विशालतर चेतना, एक सत्यतर सत्य और एक अधिक विश्वव्यापक शुभ के लिए सतत अभीप्सा रखनी चाहिये। और इस सबके साथ-ही-साथ, इस सबके ऊपर एक शुभेच्छा होनी चाहिये जो कभी कम नहीं होती, जो अपने कार्य में कभी असफल नहीं होती।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ८, पृ. २४७

# सद्‌भावना और प्रगति

हर चीज़ मदद करने आती है, हर चीज़। मानों कोई ऐसी पूर्ण और निरपेक्ष चेतना विद्यमान है जो तुम्हारे चारों ओर सभी चीज़ों को संगठित कर रही है। लेकिन हो सकता है कि अपने बाह्य अज्ञान में होने की वजह से तुम उसे पहचान न पाओ, हो सकता है कि शुरू-शुरू में परिस्थितियाँ जैसी दिखायी देती हैं उनका विरोध करो, शिकायत करो और उन्हें बदलने की कोशिश करो; लेकिन कुछ समय बाद, जब तुम थोड़े समझदार बन जाते हो, जब उस घटना और तुम्हारे बीच कुछ दूरी होती है तो तुम अनुभव करोगे कि वह ठीक वही चीज़ थी जो आवश्यक प्रगति के लिए ज़रूरी थी। और जानते हो, वह संकल्प है, परम सद्‌भावना है जो तुम्हारे चारों ओर सभी चीज़ों को सुव्यवस्थित करती है, और तब भी, जब तुम शिकायत करते हो और ग्रहण करने के बदले विरोध करते हो, ठीक उसी समय वह सबसे प्रभावशाली रूप में काम करती है।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ६, पृ. २०१

जब तुम सद्‌भावना से भरे हुए हो, जब तुम जान लो कि तुम कुछ नहीं जानते, कि तुम्हें सब कुछ सीखना है, तब तुम कुछ-कुछ नमनीय बनने लगते हो और जब कोई शक्ति दबाव डालती है तब तुम उत्तर देते हो।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ६, पृ. ३४१

सच्चे ढंग से काम करने का, बस, एक ही तरीक़ा है, हर क्षण, हर सेकेण्ड, हर गति में, तुम जिस उच्चतम सत्य का बोध पा सकते हो उसी को प्रकट करो, और साथ ही यह भी जानो कि इस बोध को क्रमशः प्रगतिशील होना चाहिये, कि तुम्हें अभी जो सबसे अधिक सच्चा मालूम होता है वह कल ऐसा न रहेगा, और तुम्हें अपने द्वारा उच्चतर सत्य को अधिकाधिक प्रकट करना होगा। यह तुम्हें आरामदेह तमस् में पड़ कर सोने के लिए कोई अवकाश नहीं देता; तुम्हें हमेशा जाग्रत् रहना चाहिये—मैं भौतिक नींद की बात नहीं कर रही—हमेशा जाग्रत्, हमेशा सचेतन और हमेशा प्रदीप्त ग्रहणशीलता और सद्‌भावना से भरा रहना चाहिये। हमेशा

सर्वोत्तम चाहना, हमेशा अच्छे-से-अच्छा, और अपने-आपसे यह कभी न कहना : "ओह! यह थकाने वाला है! चलो, आराम कर लूँ, चलो, सुस्ता लूँ! आह, मैं प्रयास करना बन्द कर दूँगा"; तब यह निश्चित है कि तुम तुरन्त किसी गढ़े में जा गिरोगे और कोई बड़ी मूर्खताभरी भूल कर बैठोगे!

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ७, पृ. ३१५

एक दूसरा अभ्यास भी है जो चेतना की प्रगति में बहुत अधिक सहायक हो सकता है। जब कभी किसी विषय पर मतभेद हो, जैसे कि कोई निर्णय लेने के समय अथवा कोई कार्य करने के समय, तब हमें कभी अपनी धारणा या दृष्टिकोण से चिपके नहीं रहना चाहिये। बल्कि, इसके विपरीत, हमें दूसरे के दृष्टिकोण को समझने का प्रयास करना चाहिये, अपने-आपको उसके स्थान पर रख देना चाहिये और तर्क-वितर्क या, यहाँ तक कि, लड़ाई-झगड़ा करने के बदले, एक ऐसा समाधान ढूँढ़ निकालना चाहिये जो दोनों पक्षों को युक्तिसंगत तरीक़े से सन्तुष्ट कर सके; सदिच्छा-सम्पन्न मनुष्यों के लिए हमेशा ही ऐसा एक समाधान तैयार रहता है।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १२, पृ. ६-७

यदि तुम्हारे अन्दर कोई दोष है और तुम उससे छुटकारा पाना चाहते हो पर फिर भी वह बना रहता है और तुम कहते हो कि "मैं जो कुछ कर सकता था कर चुका", तो तुम निश्चित रूप से यह मान लो कि जो कुछ तुम्हें करना चाहिये था वह सब तुमने नहीं किया है। यदि तुमने किया होता तो तुम अवश्य विजयी हुए होते, क्योंकि जो कठिनाइयाँ तुम्हारे पास आती हैं वे ठीक तुम्हारी शक्ति के अनुपात में ही आती हैं—ऐसा कुछ भी घटित नहीं हो सकता जिसका सम्बन्ध तुम्हारी चेतना के साथ नहीं है, और जो कुछ तुम्हारी चेतना से सम्बन्धित है उस पर विजय पाने की सामर्थ्य तुम्हारे अन्दर है। यहाँ तक कि जो चीज़ें और जो सुझाव बाहर से आते हैं वे भी तुम्हारी चेतना की अनुमति के अनुपात में ही तुम्हें स्पर्श कर सकते हैं और अपनी चेतना पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिए ही तुम्हारी रचना हुई है। यदि तुम कहते हो कि "मैं जो कुछ कर सकता था वह सब कर चुका हूँ और सभी चीज़ों के बावजूद यह चीज़ बनी हुई है, इसलिए मैं अब छोड़

रहा हूँ", तो तुम इस विषय में बिलकुल निस्सन्दिग्ध हो सकते हो कि तुम्हें जो कुछ करना चाहिये था वह सब तुमने नहीं किया है। जब "सब कुछ के बावजूद" कोई ग़लती ज्यों-की-त्यों बनी रहती है तो इसका मतलब है कि तुम्हारी सत्ता में छिपी कोई चीज़ एकाएक शैतान की तरह बाहर निकल आती है और तुम्हारे जीवन की पतवार अपने हाथ में ले लेती है। अतएव, करने को बस एक ही चीज़ है और वह है, जो छोटे-छोटे अन्धकारपूर्ण कोने तुम्हारे अन्दर छिपे हैं उन्हें ढूँढ़ निकालो और यदि ठीक इस अन्धकार के ऊपर अपनी सदिच्छा की छोटी-सी चिनगारी डाल दो तो वह हार मान लेगा और विलीन हो जायेगा, और जो चीज़ तुम्हें असम्भव प्रतीत होती थी वह केवल सम्भव और सुसाध्य ही नहीं बन जायेगी बल्कि **ऐसी चीज़ बन जायेगी जो सम्पन्न हो चुकी है**। इस तरह तुम एक मिनट में उस कठिनाई से छुटकारा पा सकते हो जो अन्यथा वर्षों तुम्हें हैरान-परेशान कर सकती थी। मैं इस विषय में तुम्हें पूरा आश्वासन देती हूँ। यह बात केवल एक चीज़ पर निर्भर करती है और वह यह है कि तुम्हें सचमुच, सच्चे हृदय से उससे छुटकारा पाने की इच्छा करनी होगी। और प्रत्येक चीज़ के लिए बस यही बात है, शारीरिक बीमारियों से लेकर बड़ी-से-बड़ी मानसिक कठिनाइयों तक के लिए। चेतना का एक भाग कहता है, "मैं यह नहीं चाहता", पर उसके पीछे ऐसी चीज़ों का एक अम्बार छिपा रहता है जो कुछ नहीं कहतीं, अपने को सामने नहीं प्रकट करतीं और साधारणतया अज्ञानवश ही, बस यह चाहती हैं कि चीज़ें जैसी हैं वैसी ही बनी रहें; वे यह विश्वास नहीं करतीं कि कठिनाई से मुक्त होना आवश्यक है, वे विश्वास करती हैं कि प्रत्येक चीज़ संसार के हित में सर्वोत्तम होती है। जिस महिला के साथ मेरा यह वार्तालाप हुआ था वह कहा करती थी, "कठिनाई तब शुरू होती है जब हम बदलना चाहते हैं।" फ़्रांस के एक बहुत बड़े लेखक इस बात को बार-बार दोहराते हैं और इसी के आधार पर उन्होंने अपना परम प्रिय सिद्धान्त गढ़ लिया है, "जब तुम स्वयं को पूर्ण बनाने की इच्छा करते हो तब दुःख-दैन्य आरम्भ हो जाता है; यदि तुम स्वयं को पूर्ण बनाने की इच्छा न करो तो तुम्हें कोई दुःख-कष्ट नहीं होगा।" मैं तुम्हें बता दूँ कि यह बात बिलकुल ग़लत है, परन्तु हाँ, तुम्हारे अन्दर, कुछ ऐसी चीज़ें होती हैं जो चाहती हैं कि उन्हें एकदम अकेला छोड़ दिया जाये, किसी भी

तरह परेशान न किया जाये; वे मानों कहती हैं : "ओह! कितना परेशान करते हो तुम, हमें अकेला ही छोड़ दो!"

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ४, पृ. ८६-८७

"जो लोग अपने चैत्य-पुरुष के साथ इतना पर्याप्त सम्पर्क स्थापित कर चुके हैं कि उनकी अभीप्सा की लौ और उनके प्राप्तव्य आदर्श की चेतना जीवन्त बनी रहे, उनके लिए (अवसाद के) ऐसे दौरे कम लम्बे और कम ख़तरनाक होते हैं। इस चैत्य-चेतना की सहायता से वे अपनी प्राण-सत्ता के साथ वैसे ही धैर्य और लगन के साथ व्यवहार कर सकते हैं जैसे किसी विद्रोही बालक के साथ किया जाता है; उसे सत्य और ज्योति दिखा सकते हैं, उसे विश्वास दिलाने की कोशिश कर सकते हैं और एक क्षण के लिए जो सद्भावना उसमें ढक गयी थी उसे जगाने का प्रयास कर सकते हैं।"

*("जीवन-विज्ञान", 'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२ से)*

और अब अन्तिम सान्त्वना : जो लोग सचमुच सच्चे होते हैं, जिनमें वास्तव में सदिच्छा होती है, उन सबके लिए ये सारे दौरे प्रगति के साधनों में बदले जा सकते हैं।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ४, पृ. ६१-६२

***जब तक मनुष्य को अपना सच्चा चरित्र दर्शाने के लिए अतिमानव सशरीर धरती पर न उतरे तब तक सद्भावना-भरी प्रत्येक मानव-सत्ता के लिए बुद्धिमत्ता यह हो सकती है कि वह जिस सुन्दरतम, उदात्ततम, सत्यतम और पवित्रतम, प्रदीप्ततम तथा उत्तमोत्तम वस्तु की कल्पना कर सकता है उसके बारे में सचेतन हो जाये और अभीप्सा करे कि जगत् तथा मनुष्यों की महानतम भलाई तथा कल्याण के लिए यह धारणा उसके अन्दर चरितार्थ हो सके।***

***'बुलेटिन', नवम्बर १९५४ —श्रीमाँ***

# सद्‌भावना तथा साधना

जब तुमने शुरू किया है तो तुम्हें ठीक अन्त तक जाना चाहिये। कभी-कभी जब लोग मेरे पास बड़े उत्साह के साथ आते हैं तो मैं उनसे कहती हूँ : "ज़रा सोच लो, यह सरल मार्ग नहीं है, तुम्हें समय की ज़रूरत होगी, तुम्हें धीरज की ज़रूरत होगी। तुम्हें बहुत ज़्यादा सहनशक्ति की, बहुत अध्यवसाय की, साहस की और अनथक सद्‌भावना की ज़रूरत होगी। पहले देख लो, सोच लो, क्या तुम इन सबको करने के योग्य हो, उसके बाद शुरू करो। लेकिन एक बार शुरू कर दो, तो बस, ख़तम, उसके बाद वापस जाने का सवाल नहीं रहता; तुम्हें एकदम अन्त तक जाना ही होगा।"

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ६, पृ. ४९७

*डॉ. बेचरलाल : ... सभी में भगवान् के दर्शन कैसे किये जायें, सबसे प्रेम कैसे किया जाये और सभी के लिए सद्‌भावना कैसे रखी जाये?*

*श्रीअरविन्द* : व्यक्ति को सभी के लिए सद्‌भावना रखने के विचार से प्रारम्भ करना चाहिये, स्वयं को भगवान् को समर्पित करना और दूसरों में भगवान् को देखने की कोशिश करनी चाहिये, चैत्य संयम लाने का प्रयास करो और अपने अन्दर के सभी प्राणिक तथा मानसिक आवेगों को निकाल फेंको। इस आधार पर उसे उपलब्धि के पथ पर बढ़ना चाहिये और इसी विचार को अनुभूति में प्रवेश कराना चाहिये। एक बार उपलब्धि आ जाये तो सब कुछ आसान हो जाता है, स्थैतिक स्थिति में इसे करना आसान होता है। जब इसे ऊर्जस्वी क्रिया या अभिव्यक्ति में उतारना हो तब चीज़ कठिन हो जाती है। जब तुम किसी को जंगली व्यवहार करते देखते हो तो उसमें भगवान् को देख पाना बहुत कठिन होता है, जब तक कि तुम व्यक्ति के बाहरी स्वभाव से अपने को अलग कर उसके पीछे स्थित भगवान् को न देखो।

*श्रीअरविन्द के साथ वार्तालाप (खण्ड १)* *नीरदवरण*

दूसरों के लिए असमानता की भावना रखना, पसन्दगी या नापसन्दगी का होना मनुष्य की प्राणिक प्रवृत्ति में बसा हुआ है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि कुछ लोग अपनी प्राण-वृत्ति के साथ सामञ्जस्य में रहते हैं, दूसरे

नहीं; साथ ही हर एक में प्राणिक अहंकार भी होता है जो ठेस पहुँचने पर नाख़ुश हो जाता है या जब चीज़ें उसके मन के मुताबिक नहीं होतीं, लोग उसकी रुचियों या विचारों के अनुसार नहीं चलते तो वह मुँह चढ़ा लेता है। हमारे सबके अन्दर, ऊपर होती है एक आध्यात्मिक अचञ्चलता और समभाव, सभी के लिए सद्भावना या एक स्तर पर भगवान् के सिवाय बाक़ी सबके लिए एक तरह की उदासीनता; चैत्य में सभी के लिए मौलिक रूप से समान दयालुता या प्रेम होता है, लेकिन किसी के साथ विशेष सम्बन्ध हो सकता है—लेकिन प्राण में हमेशा भेद-भाव रहता है और वह पसन्दों और नापसन्दों से भरा होता है। साधना के द्वारा प्राण को शान्त करना चाहिये; उसे ऊपर से प्रशान्त सद्भावना और सभी के लिए समानता के भाव को ग्रहण करना चाहिये और चैत्य से इसे व्यापक दयालुता और प्रेम लेना चाहिये। यह चीज़ आयेगी, लेकिन शायद इसे आने में समय लगे। तुम्हें क्रोध, उतावली या अरुचि की सभी अन्दरूनी और बाहरी गतियों से पल्ला छुड़ा लेना चाहिये। अगर चीज़ें सुचारु रूप से न चलें या ग़लत तरीक़े से की जा रही हों तो तुम अपने-आपसे इतना ही कहो, "माँ जानती हैं" और अपने काम को चुपचाप करते चलो और जब तक रगड़ न हो, काम करवाते भी चलो।

साधक दो मनोभाव अपना सकता है—लोगों की मित्रता या शत्रुता पर ध्यान दिये बिना, सबके प्रति शान्त समता बनाये रखे या अपने अन्दर एक व्यापक सद्भावना को घर करने दे।

मैं तुमसे इसकी माँग करूँगा कि किसी भी तरह के द्वेष या इस तरह की किसी भी चीज़ को अपने अन्दर न उठने दो और इसका भी ध्यान रखो कि ऐसी चीज़ें तुम पर हावी होकर तुम्हें क्रिया करने का आदेश न दें। ऐसी चीज़ों को अपने से परे हटा दो और यह देखो कि तुम्हारे लिए अन्दर की शान्ति और भगवान् की खोज ही एकमात्र महत्त्वपूर्ण चीज़ें हैं —सत्ता के ये संघर्ष तो अहंकार को हवा देते हैं। अपने-आपको एक ही दिशा में मोड़ दो, और बाक़ी सभी के लिए शान्त सद्भावना बनाये रखो।
CWSA खण्ड ३१, पृ. ३१२-१३

किसी के प्रति सहानुभूति होने पर तुम उसके सम्पर्क में आते हो और

उसके अन्दर की चीज़ों को अपने अन्दर ले लेते हो—या तुम उसे दे भी सकते हो या तुम स्वयं को छोड़ देते हो और सामने वाला तुम्हारे अन्दर की कुछ शक्ति को अपने अन्दर खींच भी सकता है। वस्तुतः प्राणिक सद्भावना में ऐसा सब होता है; एक शान्त आध्यात्मिक या चैत्य सद्भावना ऐसी प्रतिक्रियाएँ नहीं लाती।
CWSA खण्ड ३१, पृ. ३२१

... बाक़ी चीज़ों के लिए तुम्हें करना यह चाहिये कि दूसरों के प्रति उचित और सही मनोभाव रखो और वे जो कुछ कहें या करें उससे स्वयं को क्षुब्ध, चिड़चिड़ा या अप्रसन्न न होने दो—दूसरे शब्दों में, समता और व्यापक सद्भावना को बनाये रखो, जो योग करने वाले साधक के लिए उचित मनोभाव है। अगर तुम यह करो और फिर भी दूसरे क्षुब्ध और अप्रसन्न हो जायें तो फिर परवाह करने की तुम्हें कोई ज़रूरत नहीं, क्योंकि तब तुम उनकी ग़लत प्रतिक्रिया के प्रति ज़िम्मेदार नहीं होओगे।
CWSA खण्ड ३१, पृ. ३२२-२३

... सभी प्राणिक तथा भौतिक सम्बन्धों से अपने-आपको परे हटा लेने और केवल सच्चे सम्बन्ध को चाहने में कोई नुक़सान नहीं है—सचमुच हर एक जो सच्चा सम्बन्ध चाहता है उसके साथ यही घटता है—एकमात्र चीज़ जो रखी जाती है वह है, सभी के लिए व्यापक सद्भावना (प्राणिक स्नेह नहीं)। लेकिन अगर तुम एक मनोदशा से दूसरी मनोदशा में झूलते रहो तो निस्सन्देह लोग भला तुम्हें कैसे समझेंगे और उन्हें यह कहने का अच्छा कारण मिल जायेगा कि वे तुम्हारे 'मूड' के झटकों से हैरान हैं।
CWSA खण्ड ३१, पृ. ३४०-४१

अन्दर के अकेलेपन का इलाज बस एक ही है—भगवान् के साथ आन्तरिक ऐक्य, क्योंकि कोई भी मानव-सम्बन्ध अकेलेपन के इस शून्य को नहीं भर सकता। उसी तरह, आध्यात्मिक जीवन में भी दूसरों के साथ सामञ्जस्य का आधार मानसिक अथवा प्राणिक घनिष्ठता नहीं बल्कि भागवत चेतना तथा भगवान् के साथ ऐक्य होना चाहिये। जब व्यक्ति भगवान् को

पा लेता है और दूसरों में भी भगवान् को ही देखता है तब सचमुच सच्चा सामञ्जस्य आता है। तब तक मनुष्य अपने अन्दर एक सद्भावना और एकता बनाये रख सकता है जो इस तथ्य पर आधारित हो कि हम सबका एक ही समान लक्ष्य है—प्रभु की प्राप्ति और यह कि हम सभी श्रीमाँ की सन्तान हैं। सच्चा सामञ्जस्य केवल तभी आ सकता है जब हमारा आधार चैत्य या आध्यात्मिक हो।

CWSA खण्ड ३१, पृ. ३१०-११

साधकों के परस्पर सम्बन्ध में सामञ्जस्य, सद्भावना, सहिष्णुता, समता आवश्यक आदर्श हैं। साधकों का आपस में मेल-जोल ज़रूरी नहीं है, लेकिन अगर कोई निस्संग, अपने-आपमें ही रहता है तो इसके पीछे साधना का कारण होना चाहिये, दूसरे उद्देश्य नहीं—और सबसे बढ़ कर, इसके पीछे स्वयं की श्रेष्ठता और दूसरों के प्रति तिरस्कार का भाव कभी नहीं होना चाहिये।... अगर किसी के साथ का सम्पर्क किसी भी कारण साधक या साधिका के अन्दर अवाञ्छनीय प्राणिक भावनाओं को जगाये तो वह सावधानी के तौर पर निश्चित रूप से उस साहचर्य से दूर हट सकता या हट सकती है जब तक कि वह अपनी उस कमज़ोरी पर विजय न पा ले। लेकिन कतराने का दिखावा करना, सार्वजनिक सम्मेलनों इत्यादि को नीची दृष्टि से देखना—ऐसी चीज़ों के बारे में काफ़ी घपला बना रहता है, क्योंकि इसमें प्राण बीच में टपक जाता है और चीज़ों के प्रति उचित दृष्टिकोण अपनाने में बाधा डालता है। केवल तभी जब तुम कोई काम सच्चाई के साथ, सही आध्यात्मिक उद्देश्य को अपना कर करते हो, तुम योगपथ पर होते हो।...

CWSA खण्ड ३१, पृ. ३४७-४८

दूसरे साधकों के प्रति समस्त विद्वेष या नापसन्दगी को एकदम चले जाना चाहिये। सभी के प्रति एक शान्त सद्भावना तथा उदारता का भाव हो, लेकिन गहरा मेल-जोल या आदान-प्रदान न हो। पसन्दगी और नापसन्दगी का अर्थ हमेशा प्रभावों की अदला-बदली ही होता है।

CWSA खण्ड ३१, पृ. ३४६

वे सम्बन्ध जो मानव-जीवन में सामान्य प्राणिक प्रकृति का हिस्सा होते हैं, उनका आध्यात्मिक जीवन में कोई मूल्य नहीं होता—वे तो सचमुच प्रगति में बाधक ही होते हैं; क्योंकि मन और प्राण को पूरी तरह से भगवान् की ओर मुड़ा हुआ होना चाहिये। इसके अतिरिक्त, साधना का उद्देश्य ही है आध्यात्मिक चेतना में प्रवेश करना और सभी चीज़ों को एक नये आध्यात्मिक आधार पर बिठाना और यह चीज़ तभी की जा सकती है जब व्यक्ति भगवान् के साथ पूर्ण एकता सुस्थापित कर चुका हो। इस बीच मनुष्य को सबके लिए एक शान्त सद्भावना होनी चाहिये, लेकिन प्राणिक प्रकार के सम्बन्ध कोई सहायता नहीं करते—क्योंकि वे चेतना को प्राणिक आधार पर बनाये रखते हैं और उसे उच्चतर स्तर पर उठने से रोकते हैं।
CWSA खण्ड ३१, पृ. २८३

बात यह नहीं है कि सबके लिए प्रेम का होना साधना का अंग नहीं है, लेकिन उसे एकदम से सबके साथ घुल-मिल जाने में नहीं बदल देना चाहिये—वह प्रेम व्यापक रूप में स्वयं को अभिव्यक्त कर सकता है और जब आवश्यकता हो तो एक ऊर्जस्वी, विश्वव्यापी सद्भावना प्रसारित कर सकता है, लेकिन सभी चीज़ों में इस उच्चतर चेतना को उसके सभी प्रभावों के साथ नीचे पृथ्वी पर उतारने के कार्य में इस प्रेम को कहीं कोई उद्घाटन पाना होगा। रही यह बात कि पृथ्वी के सभी कार्यों के पीछे हम भगवान् के हाथ को ही देखें तो यह भी बहुत ज़रूरी है, यहाँ तक मानें कि हमारे संघर्षों और कठिनाइयों के पीछे भी उन्हीं का हाथ है, लेकिन मनुष्य और पृथ्वी को, अभी वे जैसे हैं, उसी रूप में उन्हें कतई नहीं स्वीकार कर सकते—हमारा लक्ष्य है, भागवत क्रिया-कलाप की ओर अधिकाधिक बढ़ना और हमारी यही क्रिया पृथ्वी की वर्तमान अवस्था के स्थान पर अधिक महान् तथा अधिक सुखी अभिव्यक्ति लायेगी। यह भागवत प्रेम को अभिव्यक्त करने की प्रसव-पीड़ा के समान कार्य है।
CWSA खण्ड ३५, पृ. ८१२-१३

यह अहंकार ही है जो अपने-आपको बहुत महत्त्वपूर्ण समझता है और बिना बात का बखेड़ा खड़ा कर अपना डंका ख़ुद ही पीटता रहता

है, लेकिन साथ ही, अवसाद, आत्म-निन्दा और यह भावना भी कि दूसरे मुझे नहीं चाहते, मेरा साथ नहीं पसन्द करते—अहंकार का ही एक रूप है। पहला है राजसिक अहंकार और दूसरा है तामसिक अहंकार। हमेशा अपने में ही सीमित रहना और दूसरों की क्रियाओं को उसी हद तक पत्ता देना जहाँ तक वे तुम्हारा स्वार्थ पूरा करें—अहंकार का ही भयंकर रूप है। अहंकार से मुक्त व्यक्ति बन्द और सीमित नहीं रहता, न इस तरह की सँकरी चीज़ें उसे परेशान ही करती हैं। योग में तुम्हें इन चीज़ों से निर्लिप्त और उदासीन रहना चाहिये, बस साधना और भगवान् के बारे में सोचो तथा औरों के लिए तुम्हारा मनोभाव शान्त सद्भावना-भरा होना चाहिये, जिसमें न कोई माँग हो, न कोई प्रत्याशा।

CWSA खण्ड ३१, पृ. २२६

सचमुच स्वयं को छलने के दो तरीक़े हैं जो बहुत भिन्न हैं। उदाहरणार्थ, जब तुम देखते हो कि लोग बुरा व्यवहार करते हैं, स्वार्थी, अविश्वस्त और विश्वासघाती बन जाते हैं तो व्यक्तिगत कारणों से नहीं बल्कि सद्भावना और भगवान् की सेवा की लगन के कारण तुम्हें आघात पहुँचता है। एक ऐसी अवस्था होती है जिसमें तुम इन वस्तुओं पर अधिकार पा लेते हो और इन्हें अपने अन्दर अभिव्यक्त नहीं होने देते। किन्तु जिस हद तक तुम सामान्य चेतना, सामान्य दृष्टिकोण, सामान्य जीवन और सामान्य विचार के सम्पर्क में रहते हो, उस हद तक इनकी सम्भावना भी तुम्हारे अन्दर मौजूद रहती है, ये चीज़ें तुम्हारे अन्दर प्रसुप्त ढंग से रहती हैं क्योंकि जिन गुणों को तुम प्राप्त करना चाहते हो ये वस्तुएँ उनकी विरोधी होती हैं। और यह विरोध हमेशा चलता रहता है—तब तक, जब तक तुम इनसे ऊपर और परे नहीं चले जाते, जब तक तुम गुण और अवगुण से ऊपर नहीं उठ जाते। जब तक तुम्हारे अन्दर गुण की भावना रहती है तब तक उसकी विरोधी वस्तु भी प्रसुप्त रूप में रहती है। जब तुम गुण और दोष को पार कर जाते हो केवल तभी यह बात समाप्त होती है।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १०, पृ. ९०-९१

*सद्भावना रखने वाले हर व्यक्ति में सत्य के लिए प्रयास होना चाहिये।*

—श्रीमाँ

*श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ*

**दयालु मन**

*परिवर्तन के लिए मन अपने-आपको तैयार करता है*

हिन्दी—तुरई

जब तक हमें यह नहीं मालूम हो जाता कि हमारे लिए कौन-सा विशेष कार्य नियत है, हमें कोई ऐसा सामयिक कार्य ढूँढ़ लेना चाहिये जो हमारी वर्तमान क्षमताओं और शुभेच्छा को श्रेष्ठतम रूप में प्रकट कर सके।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड २, पृ. ६०

तुम्हें बहुत जागरूक, बहुत आत्म-संयत और बहुत धीर होना चाहिये और तुम्हारे अन्दर अखूट सद्भावना भरी होनी चाहिये। तुम्हें कभी भी नम्रता की एक छोटी लेकिन पर्याप्त मात्रा लेने में लापरवाही नहीं बरतनी चाहिये और तुम्हें अपनी सच्चाई और निष्कपटता से कभी सन्तुष्ट न होना चाहिये। इसकी चाह हमेशा अधिक, और अधिक होती रहनी चाहिये।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ६, पृ. ४९५-९६

जब चीज़ें उलटी होने लगें तभी अपनी सद्भावना और सच्चे सहयोग का भाव दिखाने का उत्तम अवसर होता है।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १४, पृ. २०५

# सद्‌भावना तथा मानव-सम्बन्ध

अगर तुमने जीवन का आरम्भ थोड़ी सचेतनता और बहुत सद्‌भावना के साथ किया है तो जब तुम ऐसे व्यक्तियों से मिलते हो जिनकी संगति वाञ्छनीय नहीं है तो तुम उसे महसूस कर लेते हो। और अगर तुम्हारे अन्दर सद्‌भावना हो तो तुम तुरन्त उनसे न मिलने या उनके संग न रहने की कोशिश करते हो। **'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ५, पृ. ४५२

प्राण का भावुक भाग ही लोगों से लड़ाई-झगड़ा मोल लेता है, उनसे बातचीत बन्द कर देता है और यही समान भाग अपने उस 'मूड' की प्रतिक्रिया के रूप में उनसे बातचीत करना और सम्बन्ध का सुख पाना चाहता है। जब तक किसी व्यक्ति में यह गति होती रहती है तब तक वह बेपेंदी के लोटे की तरह इधर-से-उधर लुढ़कता ही रहता है। केवल तभी जब वह इस भावुकता से पीछा छुड़ा कर अपने सभी शुद्ध तथा पवित्र भावों को भगवान् की ओर मोड़ दे कि ये उतार-चढ़ाव ग़ायब हो जाते हैं और इनका स्थान एक शान्त सद्‌भावना ले लेती है।
CWSA खण्ड ३१, पृ. २१०

हर एक के चारों ओर एक वातावरण होता है जो उन स्पन्दनों से बना होता है जो उसके चरित्र, मनोदशा, सोचने, अनुभव करने, कार्य करने के तरीक़े से आते हैं। ये वातावरण छूत के द्वारा एक-दूसरे पर क्रिया-प्रतिक्रिया करते हैं। ये स्पन्दन संक्रामक होते हैं, यानी, हम जिस किसी से मिलते हैं उसके स्पन्दन को आसानी से ले लेते हैं, विशेष रूप से अगर वह स्पन्दन बहुत मज़बूत हो। अतः यह समझना आसान है कि जो अपने अन्दर या अपने चारों ओर शान्ति और सद्‌भावना लिये रहता है, वह एक तरीक़े से दूसरों पर अपनी शान्ति और सद्‌भावना का कुछ अंश तो आरोपित कर ही देगा; जब कि घृणा, चिड़चिड़ाहट और क्रोध औरों में इसी तरह की गतिविधियाँ जगायेंगे। बहुत-सी घटनाओं की व्याख्या इसी लीक पर चलने से मिल जायेगी—हालाँकि, निस्सन्देह यही एकमात्र व्याख्या नहीं है!

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १६, पृ. ३७

माताजी चाहती हैं कि जो लोग दर्शकों के स्वागत के लिए ज़िम्मेदार हैं वे उनके प्रति आचरण में बहुत सौम्य और शिष्ट रहें। आने वाले अमीर-ग़रीब, बूढ़े-जवान, अच्छे कपड़ों में सजे या फटेहाल, कैसे भी क्यों न हों, सबका सद्व्यवहार और भद्रता के साथ स्वागत करना चाहिये। यह ज़रूरी नहीं है कि आश्रम में अच्छे कपड़ोंवाले ज़्यादा अच्छे स्वागत के योग्य हों। ऐसा न होना चाहिये कि भिखारी-से दीखने वाले सामान्य आदमी की अपेक्षा मोट रवाले की ओर ज़्यादा ध्यान दिया जाये। हमें यह न भूलना चाहिये कि वे भी उतने ही मानव हैं जितने हम और हमें यह मानने का कोई अधिकार नहीं है कि हम सोपान के शिखर पर हैं।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १३, पृ. १७९-८०

*लेकिन यदि दुर्भावना की शक्ति दूसरे व्यक्ति की सद्भावना की अपेक्षा ज़्यादा सबल हो तो?*

हाँ, यह सच है, ऐसा हो सकता है। मूलतः, इसी कारण हम हमेशा एक ही बात पर लौट आते हैं : तुम जितना कर सकते हो करो, यथासम्भव अच्छे-से-अच्छा करो, और उसे भगवान् के प्रति निवेदन के रूप में करो, और फिर, जब यह सब एक बार स्थापित और संगठित हो जाये, तो यदि सत्ता में सचमुच अभीप्सा है, और सत्ता प्रकाश की सत्ता है, तो वह सब बुरे प्रभावों को प्रभावहीन कर सकेगी। लेकिन तुमने इस जगत् में एक बार क़दम रख दिया है तो तुम बुरे प्रभावों से पूरी तरह निर्लिप्त और मुक्त रहने की बहुत आशा नहीं कर सकते। हर बार जब तुम खाते हो तो उन्हें आत्मसात् करते हो, हर बार जब तुम साँस लेते हो तो उन्हें आत्मसात् करते हो। तब, तत्त्वतः, जो चीज़ ज़रूरी है वह यह कि उत्तरोत्तर, जितना कर सको, परिमार्जन करते चलो।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ५, पृ. ४५२-५३

जब भी सच्चाई और सद्भावना होती है, 'भगवान्' की सहायता भी वहाँ रहती है।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १४, पृ. ९३

*श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ*

**प्राणिक सद्भावना के प्रति प्रयास**

*प्रयास छोटी चीज़ होती है, लेकिन यह भविष्य के लिए एक प्रतिज्ञा बन सकता है*

हिन्दी—नीला गुलमोहर

अगर हम ध्यान दें तो हमारे चारों ओर जो लोग हैं उनमें से हर एक हमारे लिए दर्पण हो सकता है जिसमें हमारे एक या अनेक पहलू प्रतिबिम्बित होते हैं। अगर हम उससे लाभ उठाना जानें तो यह हमारी प्रगति के लिए प्रबल सहायक हो सकता है। और जब दर्पण सच्चा, निष्कपट और सद्भावनापूर्ण हो तो सहायता का मूल्य बहुत बढ़ जाता है।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १४, पृ. ३०४

तुम्हें अपने हृदय में निरन्तर सद्भावना और प्रेम बनाये रखना चाहिये और उन्हें सभी के ऊपर शान्ति और समता के साथ प्रवाहित होने देना चाहिये।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १४, पृ. २०६

# सद्‌भावना तथा सामुदायिक जीवन

***अच्छे काम के लिए सहयोग और परस्पर सद्‌भावना अनिवार्य हैं।***
**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १४, पृ. ३४४

मैं दो शर्तें रखूँगी। प्रगति की चाह—यह सचमुच साधारण शर्त है। प्रगति की चाह, यह जानना कि अभी सब कुछ करना बाक़ी है, अभी सभी चीज़ों को जीतना बाक़ी है। दूसरी शर्त है : हर रोज़ कुछ-न-कुछ करना, कोई क्रिया-कलाप, कोई कर्म, कुछ भी, कोई ऐसी चीज़ जो अपने लिए न हो, और सबसे बढ़ कर कोई ऐसी चीज़ जो सबके लिए सद्‌भावना की अभिव्यक्ति हो—तुम एक दल में हो, हो न?—केवल यह दिखाने के लिए कि तुम केवल अपने लिए नहीं जीते मानों तुम विश्व के केन्द्र हो और सारे विश्व को तुम्हारे चारों ओर घूमना है। लोगों के विशाल समूह के लिए बात ऐसी ही है, और वे इसे जानते तक नहीं। हर एक को इसका भान होना चाहिये कि, सहज रूप से, व्यक्ति अपने-आपको विश्व के केन्द्र में रख देता है और यह चाहता है कि सभी चीज़ें यूँ ही, किसी-न-किसी तरीक़े से उसके पास आयें। लेकिन व्यक्ति को समग्र के अस्तित्व को पहचानने का प्रयास करना चाहिये, बस यही बात है। केवल अपनी चेतना को विस्तृत करना है, बस कुछ कम छोटा बनना है।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १३, पृ. ३४३-४४

लेकिन आध्यात्मिक दृष्टिकोण से मैं जानती हूँ कि सच्ची सद्‌भावना के साथ सभी रायों का अधिक विस्तृत और सच्चे समाधान में सामञ्जस्य किया जा सकता है। *ओरोवील* में काम करने वालों से मैं इसकी आशा रखती हूँ। ऐसा नहीं कि कुछ लोग औरों के आगे दब जायें, बल्कि इसके विपरीत, अधिक विस्तृत और पूर्ण परिणाम पाने के लिए सभी को सम्मिलित प्रयास करना चाहिये।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १३, पृ. २३२

आश्रमवाले अपनी सद्‌भावना और अपना सहयोग इस तरह दिखा

सकते हैं कि वे जितना हज़म कर सकते हैं उससे अधिक कभी न खाएँ और जितना खा सकते हैं उससे *अधिक कभी न माँगें*।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १७, पृ. ३७३

उन सबमें जो *ओरोवील* में रहना और काम करना चाहते हैं, पूर्ण सद्भावना, 'सत्य' को जानने और उसके आगे झुकने के लिए सतत अभीप्सा होनी चाहिये, उनमें काफ़ी नमनीयता होनी चाहिये जो काम में आने वाले संकटों का सामना कर सके और इस प्रकार की प्रगति करने के लिए अनन्त संकल्प हो जो परम 'सत्य' की ओर अपने-आप बढ़ता चला जाये।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १३, पृ. २१५

*(श्रीअरविन्द आश्रम के कर्मचारियों के लिए)*

यह मानी हुई बात है कि इस आदर्श स्थान में प्रवेश के लिए जिन अनिवार्य शर्तों को पूरा करने की आवश्यकता होगी वे हैं अच्छा चरित्र, अच्छा आचरण, सच्चा, नियमित और कुशल कार्य और एक व्यापक सद्भावना।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १३, पृ. १८९

हर एक का अपना समाधान होता है, और यही बड़ी मुश्किल है। 'सत्य' में पहुँचने के लिए, हर एक का अपना समाधान है। फिर भी हमें साथ मिल कर काम करने के लिए कोई रास्ता निकालना चाहिये।

तो ढाँचा विशाल होना चाहिये, बहुत लचीला, और हर एक की ओर से महान् सद्भावना : यह पहली शर्त है—पहली वैयक्तिक शर्त-—सद्भावना। हर क्षण अच्छे-से-अच्छा कर सकने के लिए काफ़ी नमनीयता।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १३, पृ. ३३८

# सद्‌भावना और मानवता

एक अकेला आदमी अपनी आध्यात्मिक शक्ति से जो कर सकता है उसी को एक समुदाय भी प्राप्त कर सकता है, यदि वह सद्‌भावना के विचार में सम्मिलित हो जाये :

*कैल्डियन दीक्षा :*

"अगर तुम बारह, धर्मपरायणता में एक हो जाओ तो तुम अनिर्वचनीय को अभिव्यक्त कर सकते हो।"

दलों पर भी वही विधान लागू होते हैं जो व्यक्तियों पर लगते हैं।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड २, पृ. १२८

मानवजाति की बाहरी एकता व्यक्ति की सद्‌भावना तथा सच्चाई पर निर्भर करती है।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १५, पृ. ७२

सबके लिए सद्‌भावना और सबकी ओर से सद्‌भावना ही शान्ति और सामञ्जस्य का आधार है।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १३, पृ. २६३

विशेषकर कर्मठ लोगों के विचार प्रत्यक्ष, रचनाशील, बहुत क्रियाशील और ऊर्जाशील होते हैं। वे चीज़ों को एक ही रेखा में देखते हैं और यह चीज़ काम करने के लिए अनिवार्य है; वे यह देख सकते हैं कि चीज़ों को अमुक-अमुक तरीक़े से करना चाहिये। हो सकता है कि दूसरे व्यक्ति का विचार भी उतना ही सक्रिय हो और वह कहे, "नहीं, इसे इस तरह करना चाहिये।" फिर वे झगड़ते हैं, और किसी समझौते पर नहीं आ पाते। लेकिन तुम एक मिनट के लिए शान्त रहकर चीज़ को शान्त मन के साथ देख सकते हो। ज़रूरी नहीं है कि दूसरा व्यक्ति अपनी दुर्भावना प्रकट कर रहा है, उसका दृष्टिकोण सच्चा या आंशिक रूप से सच्चा हो सकता है। प्रश्न है यह खोजने का कि वह इस तरह क्यों सोचता है। अतः, तुम यह सोचने के लिए रुक जाओ और दूसरे व्यक्ति के दृष्टिकोण के साथ अपने-आपको

एक करने की कोशिश करो, अपने-आपको उसके स्थान पर रख कर स्वयं से कहो, "वह जिस तरह सोच रहा है उस तरह सोचने का कोई कारण हो सकता है, और वह कारण मेरे कारण से अधिक अच्छा भी हो सकता है।" और इस तरह, तुम्हें ऐसा कोई हल ढूँढ़ने का प्रयास करना ही चाहिये जो उचित रूप से दोनों पक्षों को सन्तुष्ट कर सके। भौतिक चीज़ों के साथ काम करते हुए ऐसा करना बहुत आवश्यक होता है। स्वभावतः मनुष्य केवल अपनी दृष्टि से देखता है और उसका अपना दृष्टिकोण हमेशा स्वार्थपूर्ण होता है। किसी दूसरे के दृष्टिकोण को स्वीकार करना बहुत मुश्किल होता है क्योंकि यह दृष्टिकोण तुम्हारे लिए "हानिकर" हो सकता है। जहाँ राष्ट्रों की बात आती है वहाँ यह निर्विवाद सत्य है। काश! राष्ट्र सीधी-सादी चीज़ों के लिए हमेशा विवाद करने के, अपने ही स्वार्थों की रक्षा करने के और केवल अपना निजी दृष्टिकोण, यानी अपना राष्ट्रीय व्यक्तित्व देखने के स्थान पर, यह समझने की कोशिश करते कि हर राष्ट्र को पृथ्वी पर जीने का अधिकार है और यह नहीं कि उन्हें इस अधिकार से वञ्चित किया जाये बल्कि ऐसा समझौता ढूँढ़ा जाये जो सबको सन्तुष्ट कर दे। समाधान हमेशा होता है लेकिन एक शर्त पर और शर्त हल ढूँढ़ने में नहीं बल्कि उसे कार्यान्वित करने के बारे में है: व्यक्तियों और राष्ट्रों में सद्भावना होनी चाहिये।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १५, पृ. ३४९-५०

*क्या सद्भावना के स्पन्दनों से हम संसार की सहायता कर सकते हैं?*

शुभ कामनाओं से हम बहुत-सी चीज़ें बदल सकते हैं, पर वह बहुत ही शुद्ध और अमिश्रित सद्भावना होनी चाहिये। यह तो बिलकुल स्पष्ट है कि यदि संसार में एक विचार, एक पूर्ण रूप से शुद्ध और सच्ची प्रार्थना भेजी जाये तो वह अपना काम करती है। लेकिन जब यह पूर्णतः शुद्ध और सच्चा विचार व्यक्ति के दिमाग़ में से गुज़रता है तो शुद्ध कहाँ रहता है? वह नीचे की ओर उतरता जाता है। यदि आन्तर चेतना और ज्ञान के प्रयत्न से तुम सचमुच अपने अन्दर किसी कामना पर विजय पा सको, अर्थात्, उसे विघटित कर सको, उसे जड़ से निकाल बाहर कर सको और यदि

आन्तरिक सद्भावना के द्वारा, चेतना, प्रकाश, ज्ञान के द्वारा, कामना को विघटित कर सको तो सबसे पहले अपने अन्दर व्यक्तिगत रूप से, कामना की पूर्ति पर तुम जितने प्रसन्न होते उससे सैकड़ों गुना अधिक प्रसन्न होओगे और फिर इसका अद्भुत परिणाम होगा। इसकी प्रतिक्रिया सारे संसार में होगी जिसका तुम्हें कोई अन्दाज़ नहीं। वह फैलेगी। तुमने जो स्पन्दन पैदा किये हैं वे फैलते जायेंगे। ये चीज़ें बरफ़ के गोले की तरह बढ़ती जाती हैं। तुम अपने चरित्र में जो विजय प्राप्त करते हो, वह चाहे कितनी ही छोटी क्यों न हो, वह ऐसी है जो सारे संसार में प्राप्त की जा सकती है। अभी मेरा आशय इसी से था। वे सब चीज़ें जो आन्तरिक परिवर्तन के बिना केवल बाहर से की जाती हैं—जैसे विद्यालय, अस्पताल वगैरह बनवाना—वे मिथ्याभिमान के द्वारा, बड़े होने की भावना के द्वारा की जाती हैं; जब कि ये छोटी अलक्षित चीज़ें, जिन्हें अपने अन्दर जीता जाता है, अनन्तगुनी बड़ी विजयें होती हैं, भले उनके परिणाम छिपे रहें। तुम्हारी प्रत्येक गतिविधि, जो मिथ्या और सत्य-विरोधी है, वह भागवत जीवन का निषेध है। तुम्हारे छोटे प्रयासों के यथेष्ट परिणाम होते हैं, तुम्हें उन्हें जानने का सन्तोष भी नहीं मिलता, परन्तु वे सच्चे होते हैं और उनका प्रभाव सुनिश्चित रूप से निर्वैयक्तिक और सामान्य होता है।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ५, पृ. २१-२२

तुम्हारे अन्दर, व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से, जो दोष हैं तुम उन सबको जानते हो, और तुम जानते हो कि सद्भावना के बावजूद, जो बिलकुल स्पष्ट है, अभी बहुत कुछ करना बाक़ी है ताकि संसार वैसा हो जाये जिसकी कल्पना मनुष्य सामान्य धारणाओं से निकल कर करता है —बस, हम उसे सामञ्जस्य, शान्ति, समझ, उदारता, सद्भावना, निःस्वार्थता, किसी उच्चतर आदर्श के प्रति निष्काम निवेदन, आत्म-विस्मृति... आदि का संसार कह सकते हैं, तुम ऐसी और अधिक चीज़ें चाहते हो, इनके सिवा और भी बहुत-सी हैं। तुम्हें आरम्भ में ज़रा-सी चीज़ से शुरू करना चाहिये, बस, इतनी ही : ज़रा ज़्यादा महत्तर विचार हों, ज़रा ज़्यादा विशाल समझदारी हो, धर्मान्धता नहीं हो।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ७, पृ. २०६

# सद्‌भावना और शिक्षा

ठीक ढंग से जीना एक बहुत कठिन कला है, और यदि व्यक्ति बहुत छोटी उम्र से ही सीखना और प्रयत्न करना शुरू नहीं करता तो वह उसे भली-भाँति कभी नहीं सीख सकता। अपने शरीर को स्वस्थ और मन को शान्त रखने और हृदय में सद्‌भावना सँजोने की कला शालीन जीवन जीने के लिए अति आवश्यक है। मैं आराम से या असाधारण ढंग से जीने की बात नहीं कर रही, मैं केवल शालीन जीवन जीने की बात कर रही हूँ। हाँ, तो, मेरे विचार में, ऐसे व्यक्ति बहुत नहीं हैं जो अपने बच्चों को यह बात सिखाने की परवाह करते हैं।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ६, पृ. १७३-७४

क्योंकि केवल ऐसी व्यवस्था तथा सामूहिक संघटन में ही—जो पारस्परिक सद्‌भावना पर आधारित हो—मनुष्य को इस दुःखद अव्यवस्था में से बाहर निकालने की सम्भावना होती है जिसमें वह आज अपने-आपको फँसा हुआ पा रहा है। इसी उद्देश्य और भावना के साथ इस विश्वविद्यालय-केन्द्र (आश्रम का विद्यालय) में समस्त मानवीय प्रश्नों तथा समस्याओं का अध्ययन किया जायेगा; और इनका हल भी उस अतिमानसिक ज्ञान के प्रकाश की सहायता से किया जायेगा जिस पर श्रीअरविन्द ने अपने ग्रन्थों में विशद प्रकाश डाला है। **'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १२, पृ. ४८

... लेकिन अब इस प्रयास को हर व्यक्ति के जीवन का आधार बनना चाहिये, विशेषकर उनके जीवन का जो ज़िम्मेदार स्थिति में हैं और जिन्हें औरों की देखभाल करनी होती है। नेताओं को हमेशा उदाहरण सामने रखना चाहिये, नेताओं को हमेशा उन गुणों का अभ्यास करना चाहिये जिनकी वे उन लोगों से माँग करते हैं जो उनकी देख-रेख में हैं; उन्हें समझदार, धीर, सहनशील, सहानुभूति, ऊष्मा और मैत्री से पूर्ण सद्‌भावना से भरा होना चाहिये। ये चीज़ें अहंकार के कारण या अपने लिए मित्र बटोरने के लिए नहीं, बल्कि उदारता के कारण होनी चाहियें ताकि वे औरों को समझ सकें और उनकी सहायता कर सकें।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १३, पृ. १७६

और सबसे बड़ी बात यह है कि बच्चों के सामने अच्छा उदाहरण रखा जाये...। जो तुम उन्हें बनाना चाहते हो वह स्वयं बनो। निःस्वार्थता, धैर्य, आत्म-संयम, सब परिस्थितियों में सदा प्रसन्न बने रहने की वृत्ति, अपनी तुच्छ वैयक्तिक नापसन्दगियों पर विजय, एक प्रकार की चिर-सदिच्छा, दूसरे की कठिनाइयों को समझना—इन चीज़ों का उदाहरण उनके सामने रखो। और अपने स्वभाव में ऐसी समता रखो कि बच्चे तुमसे भय न करें, क्योंकि दण्ड का भय ही बच्चों को छल करना, झूठ बोलना, यहाँ तक कि बुरा काम करना सिखाता है। यदि वे यह समझें कि वे तुम पर विश्वास कर सकते हैं तो वे तुमसे कुछ छिपायेंगे नहीं और तब तुम आज्ञाकारी और सच्चा बनने में उनकी सहायता कर सकोगे। सबसे महत्त्वपूर्ण बात है, अच्छा उदाहरण रखना। श्रीअरविन्द इन्हीं चीज़ों की चर्चा करते हैं—सब परिस्थितियों में सदा बने रहने वाला प्रसन्न मनोभाव, आत्म-विस्मरण, अर्थात्, अपनी छोटी-छोटी कठिनाइयों को दूसरों पर न डालना; जब तुम थके हुए हो या तुम्हारी तबीयत ठीक न हो तब भी बदमिज़ाज न होना, धैर्य न खोना। और यह एक पर्याप्त पूर्णता की, एक आत्म-संयम की माँग करता है जो उपलब्धि के मार्ग पर एक महान् पग है। यदि तुम एक सच्चे नेता बनने की शर्तें पूरी कर लो, चाहे वह बच्चों के एक छोटे-से दल का नेता बनना ही क्यों न हो, तब तुम योग साधित करने के लिए जिस अनुशासन की आवश्यकता है, उसमें काफ़ी आगे बढ़ चुके होओगे।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ९, पृ. ८९-९०

*श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ*

**मानसिक सद्भावना**

*कुछ दिखावा करना पसन्द करती है, लेकिन बहुत उपयोगी होती है।*

# सद्‌भावना तथा शरीर

यह सच है कि शरीर में **बहुत** सद्‌भावना होनी चाहिये—मेरे शरीर में सद्‌भावना है। और यह मानसिक सद्‌भावना नहीं है, यह सचमुच शारीरिक सद्‌भावना है। वह सब प्रकार की असुविधाएँ स्वीकार कर लेता है।... लेकिन महत्त्वपूर्ण चीज़ है मनोभाव, परिणाम नहीं (मुझे विश्वास है कि ये असुविधाएँ अनिवार्य नहीं हैं); महत्त्व है मनोभाव का। हाँ, वह ऐसा होना चाहिये *(खुले हाथों की मुद्रा)*। वास्तव में मैंने देखा है कि अधिकतर उदाहरणों में भगवान् के प्रति समर्पण में यह ज़रूरी नहीं है कि उनमें विश्वास हो—क्योंकि तुम भगवान् के प्रति समर्पण करते हो, तुम कहते हो : "तुम भले मुझे कष्ट दो, मैं अपने-आपको समर्पित करता हूँ।" लेकिन यह विश्वास का एकदम अभाव है! हाँ, वास्तव में यह बड़ी मज़ेदार बात है, समर्पण में ही विश्वास *नहीं आ जाता*; विश्वास कुछ और ही चीज़ है। वह एक प्रकार का... ज्ञान है—एक "अटल" ज्ञान जिसे कोई चीज़ नहीं हिला सकती—कि जो चीज़... 'भागवत चेतना' में पूर्ण 'शान्ति' है उसे स्वयं *हम* कठिनाई, पीड़ा और दुःख-दैन्य में बदल देते हैं। हम स्वयं यह छोटा-सा रूपान्तर ले आते हैं।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ११, पृ. ३०१-०२

वस्तुतः भौतिक सत्ता में एक प्रकार की सरलता होती है और सद्‌भावना भी (जो सदा बहुत ज्ञानपूर्ण नहीं होती, बिलकुल नहीं), किन्तु ऐसी सरलता और सद्‌भावना होती है जो इसे प्राण के आवेगों या मन की छलनाओं की अपेक्षा अन्तरात्मा के अधिक निकट सम्बन्ध में ले आती है। और शायद इसीलिए बच्चों में उनकी आन्तरात्मिक सत्ता अधिक शान्ति से रह सकती है, क्योंकि वहाँ मानसिक और प्राणिक विरोध उन्हें सारे समय झकझोरते नहीं रहते।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ६, पृ. ६

केवल चैत्य प्रेरणा ही ठीक है। जो कुछ प्राण और मन से आता है वह आवश्यक रूप से अहंकार-मिश्रित और मनमाना होता है। व्यक्ति को

बाहरी सम्पर्कों के साथ *प्रतिक्रिया* द्वारा नहीं, बल्कि प्रेम और सद्भावना की निर्विकार दृष्टि से काम करना चाहिये। बाक़ी सब कुछ तो केवल एक मिश्रण होता है जिसमें उलझे हुए और मिले-जुले परिणाम होते हैं और जो अव्यवस्था को निरन्तर बनाये रखता है।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १२, पृ. ३६३

तुमसे प्रगति करवाने के लिए, जान-बूझ कर तुम्हें बीमारी दी जाती है? निश्चय ही चीज़ ऐसी नहीं है। यानी, तुम चीज़ को उलट कर कह सकते हो कि ऐसे लोग होते हैं जिनमें इतनी सतत अभीप्सा रहती है, जिनमें सद्भावना इतनी पूर्ण होती है कि उन्हें चाहे कुछ क्यों न हो, वे उसे प्रगति करने के लिए मार्ग की कसौटी मान लेते हैं। मैंने ऐसे लोग देखे हैं जो बीमार होने पर, उसे 'भगवान् की कृपा' का प्रमाण मान लेते हैं जो उन्हें प्रगति करने में सहायता देती है। उन्होंने अपने-आपसे कहा: यह एक अच्छा लक्षण है, मैं अपनी बीमारी का कारण ढूँढ़ लूँगा और आवश्यक प्रगति करूँगा। मैं ऐसे कुछ लोगों को जानती थी और वे शान से आगे बढ़ते जाते थे। इसके विपरीत, कुछ ऐसे होते हैं जो इस चीज़ का लाभ उठाना तो दूर रहा, ज़मीन पर एकदम चित लेट जाते हैं। यह है उनका दुर्भाग्य! लेकिन जब व्यक्ति बीमार हो तो सच्चा मनोभाव है यह कहना: "कोई चीज़ ठीक नहीं है, मैं देखने जा रहा हूँ कि वह क्या है।" तुम्हें यह कभी न सोचना चाहिये कि भगवान् ने जान-बूझ कर बीमारी भेजी है, क्योंकि तब तो वह बहुत ही क्रूर भगवान् होगा!

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ५, पृ. १८७

क्योंकि स्वयं शरीर अब सचमुच यथासम्भव सहयोग देता है—यथासम्भव—सद्भावना और सहनशीलता की बढ़ती शक्ति के साथ सहयोग, और सचमुच, अपनी ओर लौटना बिलकुल कम होता जाता है (वह यहाँ है तो सही, लेकिन केवल एक ऐसी चीज़ के रूप में जो कभी-कभी छूती-भर है और कुछ सेकेण्डों के लिए भी नहीं रहती)। यह, यानी, वापस अपनी ओर मुड़ना, पूर्ण रूप से एक ऐसा वातावरण है जो बीभत्स, घिनौना और विनाशकारी है। यह ऐसा ही है, इसका *अनुभव* भी इसी तरह होता है।

और वह अधिकाधिक असम्भव होता जा रहा है, मैं इसे देखती हूँ। यह दृष्टिगोचर है...। लेकिन फिर भी हज़ारों वर्षों की बुरी आदतों के पुलिन्दे का बोझ है जिसे निराशावादी कहा जा सकता है, अर्थात् यह क्षति, विपत्ति आदि... वास्तव में, सब प्रकार की चीज़ों की आशा करता है और इसे शुद्ध करना, साफ़ करना और वातावरण में से निकाल फेंकना, उफ़! सबसे कठिन है। यह इतनी *अन्दर तक* धँसा हुआ है कि एकदम सहज बन गया है। अनिवार्य पतन या क्षति की यह भावना ही बहुत बड़ी, सबसे बड़ी रुकावट है।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ११, पृ. ७७-७८

निस्सन्देह, बाह्यतम भौतिक चेतना और चैत्य चेतना के बीच सतत सम्पर्क जमाये रखना बहुत कठिन है। और हाँ! भौतिक चेतना सद्भावना से भरी होती है। वह बहुत नियमित होती है, वह बहुत कोशिश करती है, लेकिन वह धीमी और भारी है, उसे बहुत समय लगता है, उसे हिलाना मुश्किल है। वह थकती नहीं, लेकिन वह प्रयास भी नहीं करती। वह चुपचाप अपनी ही राह चलती चली जाती है। वह बाह्य चेतना का चैत्य चेतना के साथ सम्पर्क कराने में शताब्दियाँ ले सकती है। लेकिन किसी-न-किसी कारण से प्राण इसमें हाथ डालता है। कोई आवेश उसे अभिभूत कर देता है। वह किसी-न-किसी कारण से, जो हमेशा आध्यात्मिक कारण नहीं होता, यह सम्पर्क चाहता है। वह अपनी पूरी ऊर्जा, पूरे बल और पूरे आवेश के साथ, पूरे उत्साह के साथ चाहता है, और काम तीन महीनों में हो जाता है।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ५, पृ. २८४-८५

मैं जिस चीज़ की माँग कर रही हूँ वह है भली-भाँति करने का संकल्प, प्रगति के लिए प्रयास और साधारण मनुष्यों से कुछ अधिक अच्छे जीवन में जीने की चाह। तुम बड़े हुए हो, तुम्हारा विकास असाधारण रूप से प्रकाशमान, सचेतन, सामञ्जस्यपूर्ण और सद्भावनापूर्ण परिवेश में हुआ है; और इस परिवेश के उत्तर में तुम्हें जगत् में इसी प्रकाश, इसी सामञ्जस्य, इसी सद्भावना की अभिव्यक्ति बनना चाहिये। यह अपने-आपमें बहुत अच्छा होगा, बहुत अच्छा।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ७, पृ. २२२-२३

श्रद्धा रखो, सद्‌भावना की स्थिति में रहो
और तुम सुरक्षित रहोगे।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ५, पृ. १९५

# सद्‌भावना, एक पथ-प्रदर्शक संकल्प

सद्‌भावनावाले भाग को तब तक अधिकाधिक शक्तिशाली बनाना होगा जब तक उसके अन्दर अक्खड़ भाग को वश में करने और उसे रूपान्तरित होने के लिए बाध्य करने की शक्ति न आये।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १७, पृ. १६४

जब तुम अज्ञानवश कोई ग़लत काम करते हो, क्योंकि तुम नहीं जानते कि यह ग़लत है, तो यह स्पष्ट है कि, जब तुम यह जान जाते हो कि यह ग़लत है, जब अज्ञान दूर हो जाये और तुम्हारे अन्दर सदिच्छा हो तो तुम वह भूल फिर नहीं करते, और उस अवस्था से निकल आते हो जिसमें तुम वह भूल कर सकते थे। पर यदि तुम्हें मालूम है कि यह भूल है और तुम उसे करते हो तो इसका अर्थ यह है कि तुम्हारे अन्दर कहीं विकृति है जिसने स्वेच्छा से अव्यवस्था का, या दुर्भावना का, या यहाँ तक कि भगवद्विरोधी शक्तियों का पक्ष चुना है।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ९, पृ. ३३५

यह एक बहुत बड़ी बाधा है जिससे बड़ी सावधानी के साथ बचना चाहिये। जैसे ही असन्तोष का, झुँझलाहट का ज़रा-सा भी चिह्न दिखायी दे तो प्राण से इस प्रकार कहना चाहिये, "मेरे मित्र, तुम्हें शान्त बने रहना होगा, तुमसे जो कुछ करने को कहा जा रहा है, उसे करना होगा, अन्यथा तुम्हें मेरे साथ निपटना होगा।" और दूसरे को, उत्साही भाग को, जो कहता है, "सब कुछ अभी, तुरत-फुरत होना चाहिये," तुम्हारा उत्तर होना चाहिये, "ज़रा शान्त होओ, तुम्हारी शक्ति अत्युत्तम है, पर उसे पाँच मिनट में ही ख़र्च नहीं हो जाना चाहिये। हमें बहुत दिनों तक इसकी आवश्यकता होगी, इसे सावधानी के साथ बनाये रखो और, जैसे ही इसकी आवश्यकता होगी, मैं तुम्हारे सद्‌भाव का आह्वान करूँगा। तुम यह दिखाओगे कि तुम सदिच्छा से भरपूर हो, तुम आज्ञापालन करोगे, तुम शिकायत नहीं करोगे, तुम विरोध नहीं करोगे, तुम विद्रोह नहीं करोगे, तुम बस 'हाँ, हाँ' कहोगे, जब कहा जायेगा तब तुम थोड़ा-सा त्याग करोगे, तुम पूरे हृदय से 'हाँ' कहोगे।"

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ४, पृ. २९७

जब कोई व्यक्ति बहुत सतर्क और बहुत सच्चा होता है तो जो करना उसने अंगीकार किया है या जो पहले से कर रहा होता है उसके मूल्य-महत्त्व के बारे में उसे संकेत मिल सकता है, अर्थात् एक आन्तरिक पर बिलकुल स्पष्ट संकेत। वस्तुतः जो पूरी तरह सद्भावनापूर्ण होता है, अर्थात्, जो पूरी सच्चाई के साथ, अपनी सत्ता के सचेतन सर्वांगों में ठीक चीज़ ठीक तरीक़े से करना चाहता है उसके लिए संकेत सर्वदा होता है। यदि किसी-न-किसी कारण से वह लगभग अनिष्टकारी काम का आरम्भ कर बैठता है तो *हमेशा ही* अपने हृदय में एक बेचैनी अनुभव करता है, ऐसी बेचैनी जो बहुत तीव्र तो नहीं होती, जो नाटकीय ढंग से ज़बरदस्ती अपने को जताती तो नहीं, पर उसके लिए होती बहुत स्पष्ट है जो सतर्क है, यह खिन्नता जैसी, समर्थन के अभाव जैसी चीज़ होती है। यह सहयोग देने से भी एक प्रकार से इन्कार कर सकती है। पर मैं फिर कहती हूँ, इसमें उग्रता नहीं होती, ज़ोर-ज़बरदस्ती का, अपने को मनवाने का आग्रह नहीं होता: यह शोरगुल नहीं मचाती, पीड़ा नहीं पहुँचाती, बहुत हुआ तो एक हलकी बेचैनी होती है। और यदि तुम इसे अनसुना कर दो, यदि तुम इसकी ओर ध्यान न दो, इसे कोई महत्त्व प्रदान न करो तो कुछ समय बाद यह पूरी तरह लुप्त हो जायेगी और कोई चीज़ बाक़ी न रहेगी।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ९, पृ. ३६-३७

क्योंकि—दो में से एक चीज़—तुम अपने-आपको तब तक श्रेष्ठ नहीं समझ सकते जब तक कि तुम अचेतन न होओ। जिस क्षण तुम सचमुच सचेतन हो जाते हो उसी क्षण तुम श्रेष्ठता और हीनता का भाव एकदम खो देते हो। तो, दोनों स्थितियों में, तुम्हें अपने-आपको श्रेष्ठ न समझना चाहिये—क्योंकि यह क्षुद्रता और ओछापन है—सद्भावना और सहानुभूति से भरा हुआ अनुभव करो और लोग क्या कहते हैं और क्या नहीं कहते इसकी ज़रा भी परवाह न करो, लेकिन सभ्य-शिष्ट होओ, क्योंकि अशिष्ट होने की अपेक्षा शिष्ट होना हमेशा अच्छा होता है। इस तरह तुम अपने-आपको अधिक सामञ्जस्यपूर्ण शक्तियों के सम्पर्क में रखते हो और कुरूपता तथा विनाश की शक्तियों के विरुद्ध ज़्यादा अच्छी तरह युद्ध कर सकते हो, इनके अतिरिक्त और किन्हीं कारणों से नहीं, क्योंकि हम सामञ्जस्य पसन्द करते

हैं और उसे बनाये रखना ज़्यादा अच्छा है; लेकिन तत्त्वतः तुम्हें इस सबसे बहुत अधिक ऊँचा होना चाहिये और तुम्हें केवल भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध में, वे तुमसे क्या चाहते हैं और तुम उनके लिए क्या करना चाहते हो, इसमें रस लेना चाहिये। क्योंकि **यही** एकमात्र चीज़ है जिसका महत्त्व है। बाक़ी सबका कोई महत्त्व नहीं।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ७, पृ. ४२८-२९

कल या शायद परसों, पवित्र *(आश्रम के एक फ़्रेंच साधक)* जब कुछ चिट्ठियों को छाँट रहा था तो उसके हाथ एक काग़ज़ लगा जिस पर मैंने एक वाक्य लिखा था *(फ़्रेंच में नहीं, अंग्रेज़ी में) "हाँ, सभी चीज़ों में छिपी हुई सद्भावना स्वयं को उस प्रत्येक व्यक्ति के सम्मुख प्रकट करती है जो अपनी चेतना में सद्भावना लिये रहता है। यह इसकी अनुभूति पाने का रचनात्मक तरीक़ा है कि वह सीधा भविष्य के पथ पर आगे बढ़ रहा है।"*

मुझे यह बहुत रुचिकर लगा (यह काफ़ी पहले लिखा गया था, कम-से-कम एक साल पहले लिखा होगा मैंने, और *पवित्र* ने मुझे बतलाया कि उसने यह किसी फ़ाइल में एक पन्ने पर लिखा पाया)। और यह वाक्य मानों मुझसे कह रहा था, "देखो, तुम यह बात पहले से ही कह रही थी।" क्योंकि **'सद्भावना'** 'सामञ्जस्य' है, (निस्सन्देह, मनोवैज्ञानिक स्तर पर) यह एक ऐसी इच्छा या ऐसा संकल्प है कि मनोवैज्ञानिक रूप से सब कुछ भली-भाँति, सुचारु रूप से चले। मुझे यह काफ़ी दिलचस्प लगा।

और बड़ी अच्छी बात है कि यह मेरे पास पलट कर आया; यह ऐसा वाक्य है जो सबकी पकड़ में आसानी से आ सकता है, जिसे वे समझ सकते हैं—तुमसे किन्हीं विलक्षण चीज़ों की माँग नहीं की जा रही : तुमसे बस सद्भावना माँगी जा रही है। जब मुझे यह पन्ना दोबारा मिला तो मेरे होठों पर मुस्कुराहट फैल गयी, मुझे यह बात रुचिकर लगी। मैंने कहा, "हाँ, मैं यही बात प्रसन्नचित्तता, यानी प्रफुल्लता के लिए भी कह सकती थी! मैं कह सकती थी, "प्रसन्नचित्त रहो और तुम सर्वत्र प्रफुल्लता देखोगे।" —हम बहुत-सी चीज़ें कह सकते हैं *(माँ धीरे-धीरे अपना हाथ घुमाती हैं, मानों कई पहलू दर्शा रही हों)*, यह चीज़ हमेशा मुझे एक 'कैलिएडोस्कोप'

की भाँति लगती है जिसमें रंगों का ऐसा आयोजन होता है कि जैसे ही तुम उसे आँखों से लगाते हो... उसके रंग पहले सिकुड़ते-सिमटते हैं, फिर फैल जाते हैं, दोबारा सिकुड़ जाते हैं और फिर फैल कर स्थिर हो, अन्त में सबकी दृष्टि में गोचर हो जाते हैं। यह कुछ-कुछ धरती का चित्र है। लेकिन यहाँ अभी एक चीज़ है : इस समय एक भयंकर संघर्ष पृथ्वी पर चल रहा है, लेकिन साथ ही यह अद्‌भुत भागवत 'कृपा' भी उपस्थित है जो हमेशा सहायता करने के लिए हाथ बढ़ाये रखती है, हमेशा अधिकाधिक अच्छा करने का प्रयास करती रहती है, कहती है, "चलो, उठो, प्रसन्नचित्त हो जाओ, हमेशा सद्‌भावना रखो, चलो, कमर कस लो, सन्तोष, आशा, श्रद्धा-विश्वास का आन्तरिक 'सामञ्जस्य' अपने अन्दर ले आओ। विघटन के स्पन्दनों को स्वीकार नहीं करो—उन स्पन्दनों को जो वस्तु को कम कर देते, निम्न बना देते या विनाश की ओर ले जाते हैं।"

*एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से* *३ मई १९६७*

जो यह समझता है... जो मानता है कि हमारे जाने बिना किसी उच्चतर शक्ति का हस्तक्षेप ही सब काम पूरा करता है—वह काम चाहे किसी को बचाने का हो, किसी की रक्षा करनी हो या फिर वह लोगों के लिए भगवान् का कोई उदारताभरा काम हो, मदद हो, या परित्राण आदि, वह हस्तक्षेप करता है कि मनुष्य को विश्वास दिला दे कि कोई उच्चतर शक्ति मौजूद है—जो पूरी विनम्रता के साथ, सद्‌भावना के साथ स्वीकार करता है, बड़ी शालीनता के साथ मान लेता है कि उससे परे, उसके क्षुद्र अहं के घेरे से परे भी कोई चीज़ है जो सभी कार्य सम्पन्न करती है, जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते, जानते-देखते तो बहुत ही कम हैं, जो हमारे जीवन में, हमारे पार्थिव जीवन में घटने वाले सारे तथाकथित चमत्कारों को सम्पन्न करती है। व्यक्ति को स्वयं को दे देना होगा। मन में यह मानने की इतनी तो उदारता हो कि 'दैव' ही किसी उच्चतर विधान के अनुसार सब कुछ करते हैं, जिनके प्रति हम सचेतन हो सकते हैं और 'उन्हें' हम कृतज्ञता के दो शब्द तो भेंट कर दें, ज़्यादा नहीं, बस इतना ही।

*'परम'* पुस्तक से पृ. ७७ —मोना सरकार

*श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ*

**श्रीअरविन्द की अनुकम्पा (नोनिया)**

अंग्रेज़ी-Moss rose

*अगणित, हमेशा उपस्थित, तथा हर क्षण प्रभावकारी होती है।*

सरल होना, सरल रूप में सद्भावनापूर्ण होना, अपनी तरफ़ से अच्छे-से-अच्छा, और जहाँ तक हो सके श्रेष्ठ रूप से करना कितना अच्छा है; बहुत बड़े महल न बनाना, बल्कि केवल प्रगति, प्रकाश, सद्भावनापूर्ण शान्ति के लिए अभीप्सा करना और भगवान् को, जो जगत् में सब कुछ जानते हैं, उन्हें अपने लिए इस बात का निश्चय करने देना कि तुम क्या बनो और तुम्हें क्या करना होगा। तब तुम्हें कोई चिन्ता नहीं रहती और तुम **पूर्ण रूप से** सुखी होते हो!

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ६, पृ. २८३

दयाभाव और सद्भाव में ही सच्ची महानता, सच्ची श्रेष्ठता, है।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १६, पृ. २४

यह जानना बहुत मुश्किल होता है कि व्यक्ति को कैसा होना चाहिये। क्योंकि विचार में तुम समान अवस्था में रह सकते हो, यहाँ तक कि अपनी अभीप्सा में भी तुम निरन्तर समान स्थिति में रह सकते हो—व्यापक सद्भावना में, भगवान् के प्रति निवेदन की स्थिति में भी, उसी समान अवस्था में—यह यहाँ अन्दर है *(माँ अपनी शरीर छूती हैं)*, और यही चीज़ सारा अन्तर ले आती है। तुम्हारे मन में और प्राण में इस सद्भावना का विरोध हो सकता है और उसका शायद तुम्हें पता तक न चले... लेकिन मैं एकदम से भौतिक चीज़ की बात कर रही हूँ। कुछ लोग सोचते हैं और कहते भी हैं, "यह कैसी बात है? मेरे अन्दर इतनी सदिच्छा है, ठीक चीज़ करने की इतनी कामना है, लेकिन फिर मैं देखता हूँ कि कुछ अच्छा नहीं हो रहा, मेरी इस सदिच्छा के सामने बाधाएँ ही बाधाएँ खड़ी हो जाती हैं—भला क्यों? मैं कितना भला हूँ (!) फिर भी मुझे मेरी सद्भावना का प्रत्युत्तर नहीं मिलता।" या फिर वे जो कहते हैं, "ओह, मैंने तो अपना समर्पण कर दिया, मेरे अन्दर कितनी सद्भावना है, मेरे अन्दर अभीप्सा है, मैं 'सत्य' तथा भलाई के सिवाय और कुछ नहीं चाहता, फिर भी मैं सारे समय बीमार रहता हूँ—मैं आख़िर बीमार क्यों रहता हूँ?" और स्वभावतः तुम एक क़दम और आगे सोचते हो, तुम उस न्याय के बारे में शंका करने लगते हो जो जगत् पर शासन करता है और इस तरह आगे ही आगे सोचते रहते हो। फिर तुम एक गड्ढे में गिर जाते हो... लेकिन यह अवस्था आने ही मत दो। सदिच्छा रखना एक साथ ही काफ़ी सरल और बहुत कठिन भी है, क्योंकि यह अवस्था इतनी मुखर, इतनी सुस्पष्ट नहीं होती, क्योंकि यह बाह्य की बजाय अधिक आन्तरिक क्रिया है, तुम यह नहीं कह सकते कि सद्भावना और दुर्भावना एकदम से श्वेत और श्याम चीज़ें हैं, इनके बीच ऐसी कोई लक्ष्मण-रेखा नहीं है, अन्य सब गुण-दुर्गुण की तरह ये भी कुछ मिली-जुली सी होती हैं, इसलिए हम यही कह सकते हैं कि अगर तुम सचमुच सारे समय सद्भावना की अवस्था में रहना चाहते हो तो तुम्हें सचमुच, पूरी तरह और सर्वांगीण रूप से अपनी समस्त ज़िम्मेदारी को प्रभु के हाथों में छोड़ देना चाहिये। कर सकते हो यह?

*एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से* *२३ नवम्बर १९६५*

अचञ्चल और नीरव रहना सीखना... जब तुम्हारे सामने सुलझाने के लिए कोई समस्या हो तो सब सम्भावनाओं, सब परिणामों, करणीय या अकरणीय सब सम्भव चीज़ों पर दिमाग़ लड़ाने की जगह यदि तुम सद्भावना की इच्छा लिये अचञ्चल रह सको, यदि सम्भव हो तो सद्भावना की आवश्यकता लिये, तो बहुत जल्दी समाधान निकल आता है। और क्योंकि तुम नीरव होते हो, इसलिए तुम उसे सुन पाते हो।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ९, पृ. ४५९-६०

सोचने की एक पूरी श्रेणी होती है। जो लोग यह सोचते हैं कि उनकी बुद्धि वरतर है और जिस चीज़ को वे नहीं समझते उसे ठुकरा देते हैं—ऐसों की भरमार है—भरमार। और यह ठेठ मूर्खता का लक्षण है! दूसरी ओर ऐसे भी कई हैं (ऐसों को सामान्यतया "सीधा-सादा" माना जाता है, लेकिन मेरे हिसाब से ये ही सराहनीय हैं और मैं ऐसे भोले-भालों को ही पसन्द करती हूँ, उनमें अन्तरात्मा की ऊष्मा होती है), वे जिस चीज़ को नहीं समझते उसकी भी तारीफ़ करते हैं। उनके अन्दर एक तरह की मूक सराहना होती है, जिसे समाज में बेवकूफ़ी का दरजा दे दिया जाता है, लेकिन उनके लिए न समझ में आने वाली चीज़ में भी सुन्दरता होती है। उनके अन्दर भरपूर सद्भावना होती है। जब कि दूसरे, जो अपने-आपको अपनी तथाकथित बुद्धि के उच्च शिखरों पर आसीन मानते हैं, उनकी समझ में जो चीज़ नहीं आती उसे वे बेकार घोषित कर देते हैं।

*एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से* *२८ फ़रवरी १९६७*

*अगर उनमें (राष्ट्रों में) सद्भावना न हो, अगर वे अच्छी तरह जानते हों कि वे ग़लती पर हैं लेकिन इसकी परवाह नहीं करते, अगर वे पूरी तरह से ग़लत हों और फिर भी अपने स्वार्थों से चिपके रहें, तो कुछ नहीं किया जा सकता–बस, तुम उन्हें उनके झगड़े और एक-दूसरे की बरबादी के लिए छोड़ सकते हो। लेकिन इसके विपरीत, अगर पारस्परिक सद्भावना हो तो हमेशा कोई-न-कोई अच्छा हल मिल जाता है।*

**'श्रीमातृवाणी'**, *खण्ड १५, पृ. ३५०*

# मनोभावों की शृंखला

**अनुकम्पा और दयालुता**

*अगर हम यह अनुभव करें कि वातावरण में और हर जगह शान्त-स्थिरता है, तो क्या इसका यह मतलब है कि स्वयं हमारे अन्दर शान्त-स्थिरता है?*

हाँ। जो पहली चीज़ आती है वह... उदाहरण के लिए, अगर तुम्हें कोई विशेष प्रकार की अनुभूति हो—जैसे तुम्हें शान्ति की अनुभूति हो सकती है, स्थिरता की अनुभूति, पूर्ण सद्भावना की अनुभूति भी हो सकती है, और सहानुभूति या अनुकम्पा की अनुभूति हो सकती है। यह अनुभूति ऐसी होती है मानों चेतना पर इनमें से किसी गति ने अधिकार कर लिया है; तब यह चीज़ होती है जो बाद में अजीब-सी लगती है, परन्तु उस समय के लिए बिलकुल स्वाभाविक होती है—तुम्हें लगता है कि वह चीज़ हर जगह, हर एक में, सारे वातावरण में, तुम्हारे चारों ओर है, और अगर चेतना काफ़ी विशाल है, तो लगता है कि यह सारी पृथ्वी पर है, ठीक *वही* शान्ति या *वही* अनुकम्पा या *वही* सद्भावना सब जगह है। इस तरह व्यक्ति पूरी सच्चाई के साथ कह सकता है, उस अनुभूति में पूरी तरह निवास करते हुए कह सकता है : "विश्व पूर्ण सद्भावना है।"

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ६, पृ. ४०९

और यदि तुम अपने-आपको ज़रा बाहर निकालो, अगर किसी-न-किसी कारण, तुम संसार में बहुत अधिक दुःख-दारिद्र्य के आगे खड़े कर दिये जाओ, अगर तुम्हारे मित्र दुःखी हों या सगे-सम्बन्धी कष्ट में हों या तुम्हें किसी तरह की कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा हो, कुछ भी, तो तुम यह माँगो कि समग्र चेतना **एक साथ** उस पूर्णता की ओर उठा दी जाये जिसकी अभिव्यक्ति आवश्यक है, और यह सारा अज्ञान, जिसने जगत् को इतना दुःखी बना दिया है, आलोकमय ज्ञान में बदल जाये और सारा अशुभ ज्योतिर्मय होकर शुभचिन्ता में बदल जाये। और फिर जहाँ तक कर सको, जहाँ तक समझ सको, अपने पूरे हृदय से चाहो; और वास्तव में

वह प्रार्थना का रूप ले सकता है और तुम याचना कर सकते हो—किससे याचना?—उससे याचना जो जानता है, उससे याचना जो कर सकता है, उस समस्त से याचना जो तुमसे अधिक बड़ा और अधिक बलवान् है, उससे याचना करो कि ऐसा हो सके। और ये प्रार्थनाएँ कितनी सुन्दर होंगी!

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ५, पृ. १८०-८१

भगवान् से प्रेम करने और धरती पर 'उनकी' सेवा करने का सबसे अच्छा तरीक़ा है अथक, स्पष्टदर्शी और व्यापक शुभ-चिन्ता जो सभी व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं से मुक्त हो।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १४, पृ. २०६-०७

यह सच है कि क्रोध और संघर्ष मनुष्य के प्राण में बसे हुए हैं और आसानी से नहीं निकलते; लेकिन जो आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है वह है —बदलने का संकल्प रखना और इस बात का स्पष्ट बोध होना कि अन्त में ये चीज़ें जाकर रहेंगी। यहाँ भी सबसे महत्त्वपूर्ण सहायता है कि अपनी चैत्य सत्ता को अन्दर विकसित होने देना—क्योंकि यह सबके प्रति एक तरह की दयालुता, धीरज और उदारता ले आती है और तब व्यक्ति सभी चीज़ों को अपने अहंकार के दृष्टिकोण से, दुःख और हर्ष, पसन्द तथा नापसन्द इत्यादि की दृष्टि से नहीं देखता। दूसरी सहायता यह मिलती है कि तब व्यक्ति के अन्दर एक आन्तरिक शान्ति पैठ जाती है जिसे बाहरी चीज़ें परेशान नहीं कर सकतीं। शान्ति के साथ आता है एक प्रशान्त विस्तार जिसमें व्यक्ति सबको अपने स्व के रूप में, सभी सत्ताओं को उन माँ की सन्तान के रूप में देखता है जो माँ उसके तथा अन्य सभी के अन्दर निवास करती हैं। इसी की ओर तुम्हारी साधना आगे बढ़ेगी, क्योंकि ये ही वे चीज़ें हैं जो चैत्य तथा आध्यात्मिक चेतना के विकास के संग आती हैं। तब बाहरी वस्तुओं के प्रति विक्षुब्ध करने वाली इस तरह की प्रतिक्रियाएँ नहीं होंगी।
CWSA खण्ड ३१, पृ. २७५

हमेशा सतत शुभेच्छा की स्थिति में रहना—इसे अपना नियम बना लो कि किसी चीज़ से परेशान नहीं होना और किसी की परेशानी का कारण

नहीं बनना और, जहाँ तक हो सके, किसी को कष्ट नहीं पहुँचाना।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड २, पृ. १२१

जब मनुष्य अपने साथी-मनुष्यों के साथ सम्पर्क स्थापित करता है तो इस तरह की कमज़ोरियों का प्रकट होना तो सामान्य मानव-प्रकृति का चिह्न है—प्राण में हमेशा ही इस तरह के संघर्ष और कठिनाइयाँ तथा उथल-पुथल मची ही रहती हैं। अगर तुम इनसे छुटकारा पाना चाहते हो तो वही करो जो हम पहले ही तुमसे कह चुके हैं—सभी को दयाभाव के साथ, माँ की सन्तान के रूप में देखो, लेकिन बिना किसी विशेष सम्बन्ध के और साथ ही किसी से भी किसी तरह की प्रत्याशा भी मत रखो। योग सभी वस्तुओं तथा सभी व्यक्तियों के प्रति मन की समता की माँग करता है।

CWSA खण्ड ३२, पृ. १८५

हमेशा दया से भरे रहो, कटु आलोचनाओं में व्यस्त न रहो, किसी भी चीज़ में अब अशुभ को मत देखो, आग्रह के साथ स्वयं पर दबाव डालो कि तुम 'भागवत कृपा' की हितैषी उपस्थिति के सिवाय और कुछ नहीं देखोगे, और तब तुम पाओगे कि न तुम अपने अन्दर बल्कि अपने चारों ओर भी शान्तिदायक विश्वास को अधिकाधिक फैलाते जा रहे हो। और न केवल तुम अचञ्चलता, शान्ति तथा प्रसन्नता का अनुभव करोगे बल्कि तुम्हारी अधिकतर बीमारियाँ भी ग़ायब हो जायेंगी।

*The Spiritual Significance of Flowers से* **—श्रीमाँ**

**उदारता तथा समानता**

हाँ, एक उत्कृष्ट उदारता है जो प्रसन्न हृदय और प्रशान्त आत्मा से उठती है। जिसने आन्तरिक शान्ति पा ली है वह जहाँ कहीं भी जाये, मोक्ष का अग्रदूत, आशा और आनन्द का वाहक होता है। क्या यही वह चीज़ नहीं है जिसकी बेचारी कष्ट में पड़ी हुई मानवजाति को सबसे अधिक आवश्यकता है?

हाँ, कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनके विचार प्रेममय होते हैं, जो प्रेम को विकीरित करते, फैलाते हैं। ऐसे लोगों की उपस्थिति-मात्र ही सबसे अधिक

सक्रिय और वास्तविक उदारता है।

यद्यपि वे कोई शब्द नहीं बोलते, कोई इशारा नहीं करते, लेकिन फिर भी बीमार अच्छे हो जाते हैं, पीड़ितों को शान्ति मिलती है, अज्ञानियों को बोध मिलता है, दुष्टों को शान्त कर दिया जाता है, कष्ट सहने वालों को सान्त्वना मिलती है और सभी के अन्दर एक गहरा परिवर्तन आ जाता है जो उनके लिए नये क्षितिज खोल देता है, उन्हें एक क़दम आगे बढ़ने-योग्य बनाता है और निस्सन्देह यह क़दम प्रगति के अनन्त पथ पर निर्णायक होगा।

ये लोग, जो प्रेम के कारण अपने-आपको सबको दे देते हैं, जो सबके सेवक बन जाते हैं, ये परम 'उदारता' के जीते-जागते प्रतीक हैं।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड २, पृ. ११९-२०

मुझे अपने पड़ोसी से प्यार करना चाहिये, पर इसलिए नहीं कि वह हमारे पड़ोस में रहता है—क्योंकि आख़िर पड़ोस में और दूर में क्या रखा है? और न इसलिए कि धर्म मुझे यह सिखाते हैं कि वह मेरा भाई है—क्योंकि उस भ्रातृत्व की जड़ कहाँ है? बल्कि इसलिए कि वह स्वयं मेरी आत्मा है। पड़ोस और दूरी शरीर को प्रभावित करते हैं पर हृदय उनसे परे चला जाता है। भ्रातृत्व रक्त का, देश का, धर्म का या मानवता का होता है, पर जब स्वार्थ अपनी परिपूर्ति के लिए मचलता है, तब इस भ्रातृत्व का क्या हाल होता है? जब मनुष्य भगवान् में निवास करता है और अपने मन, हृदय और शरीर को उनकी विश्वव्यापी एकता की प्रतिमूर्ति में बदल देता है केवल तभी उस गभीर, निःस्वार्थ एवं दुर्धर्ष प्रेम को पाना सम्भव होता है।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १०, पृ. ४०७

जो कम जानते हैं उन्हें शिक्षा देना, जो बुराई करते हैं उन्हें ऐसी शक्ति देना कि वे अपनी भ्रान्ति में से निकल सकें, जो दुःखी हैं उन्हें सान्त्वना देना—ये सब सही अर्थों में समझी गयी उदारता के कार्य हैं।

*

प्रतिद्वन्द्विता और प्रतियोगिता के भाव के स्थान पर सहयोग और आपसी सहमति की सद्भावना रखो।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड २, पृ. ११३; खण्ड १४, पृ. २०५

*श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ*

**उदारता** (केना)

*सरल और मधुर, सभी की आवश्यकताओं के प्रति सतर्क*

एक विश्वव्यापक उदारता, एक समालिंगनकारी और सहिष्णु प्रेम, एक शान्त तथा सभी का कल्याण करने वाला प्रेमास्पद आवेग—ये ही होंगे हमारी उपलब्धि के पहले फल। हम कोई भेद-भाव नहीं करेंगे, हम न किसी कृषक की झोंपड़ी का तिरस्कार करेंगे, न ही राजकुमारों के दरबार में शीश नवायेंगे, न किसी राजमहल के विरुद्ध क्रोध या घृणा दर्शायेंगे, न ही किसी ग़रीब की कुटिया के प्रति पक्षपात करेंगे। ये सभी चीज़ें हमारे लिए एकसमान होंगी। अछूत का स्पर्श अथवा ब्राह्मण द्वारा छिड़का गया पवित्र जल हमारे लिए समान महत्ता रखेगा—क्योंकि भला भगवान् भगवान् को कैसे अपवित्र कर सकते हैं? प्रत्येक मानव या जीवित प्राणी हमारे लिए 'उच्चतम' का मन्दिर तथा निवास-स्थान होगा। कोई भी हमारे लिए भ्रष्ट या घृणित न होगा। और साथ ही कोई भी हमारे लिए परम पावन, परम प्रिय या परम समादरणीय न होगा; क्योंकि यह सब हमारे सखा का, हमारे साथी-खिलाड़ी का घर है, नहीं, यह हमारा अपना घर है, क्योंकि प्रेमी अपने प्रेमास्पद से अलग नहीं होता, और यह एक आवास है—जगत् (यानी, स्पन्दनशील) है, स्थाणु नहीं, ऐसी वस्तु जिसे बदला जा सकता है और जिसे बदला जाना भी चाहिये, जिसके लिए हमारे अन्दर गहरा प्रेम

हो, कोई बाधक आसक्ति न हो। हमारे शत्रु की तलवार हमें आतंकित न करेगी, क्योंकि शत्रुता प्रभु की एक लीला है और जीवन तथा मृत्यु उसके आँख-मिचौली के खेलों में से एक खेल है। भगवान् भला भगवान् का वध कैसे कर सकते हैं? और जैसे-जैसे हमारी दृष्टि गहरे उतरती जायेगी वैसे-वैसे वह तलवार हमारे लिए उस 'प्रभु' के 'प्रेम' का चुम्बन बनती जायेगी—मानों प्रेमी के अधरों का स्पर्श हो—एक तेज़, पैनी और प्रचण्ड, दूसरी कोमल और प्रणययाचक—भेद बस तरीक़े का है। हम घृणा के बीभत्स तथा नक़ली मुखौटे को चीर-फाड़ देंगे और शत्रुता तथा अशुभ की आभासी उपलब्धि में प्रेम तथा शुभ की सच्ची उपलब्धि पायेंगे। हृदय के शगुन-विचार और उच्चतर ज्ञान की अन्तर्दृष्टि द्वारा हम 'परम प्रभु' की गतियों को जान कर उनके पथ को अपना लेंगे।

CWSA खण्ड १७, पृ. ४११-१२

**भ्रातृत्व**

तुम संसार में एक विशेष वातावरण में, विशेष लोगों के मध्य आये हो। जब तुम बिलकुल बच्चे होते हो, कुछ विरल अपवादों को छोड़ कर, जो कुछ तुम्हारे चारों ओर होता है वह तुम्हें एकदम स्वाभाविक प्रतीत होता है, क्योंकि तुम उसके बीच पैदा हुए हो और उस सबके लिए पूरी तरह अभ्यस्त हो। परन्तु, कुछ दिनों बाद, जब तुम्हारे अन्दर एक आध्यात्मिक अभीप्सा जाग्रत् होती है, तो बिलकुल सम्भव है कि तुम जिस परिवेश में रहते आये हो उसमें अपने-आपको पूर्णतः बेचैन अनुभव करो; उदाहरणार्थ, जिन लोगों ने तुम्हें पाला-पोसा है उनमें यदि वही अभीप्सा न हो या यदि उनके विचार तुम्हारे अन्दर विकसित होने वाले विचारों के बहुत विपरीत हों। तब यह कहने के स्थान पर कि "देखो तो, मैं इस परिवार का व्यक्ति हूँ, अब मैं क्या करूँ? मेरी माँ, मेरे पिता, मेरे भाई, मेरी बहनें हैं..." तुम खोज में निकल सकते हो (मेरा मतलब यह नहीं है कि तुम अवश्य यात्रा में निकल पड़ो), उन आत्माओं की खोज आरम्भ कर दो जिनमें तुम्हारे साथ एक प्रकार की समानता है, जिन लोगों में तुम्हारे जैसी ही अभीप्सा है और, यदि तुम्हारे अन्दर उन लोगों को पाने की सच्ची अभीप्सा हो जो तुम्हारी ही तरह किसी चीज़ की खोज में हैं, तो तुम्हें किसी-न-किसी

प्रकार, बिलकुल अप्रत्याशित परिस्थितियों में उनसे मिलने का अवसर सदा मिलेगा; और जब तुम एक या अधिक लोगों को मिल लोगे जो ठीक उसी मानसिक स्थिति में रहते हैं और जिनमें वही अभीप्सा है तो एकदम स्वाभाविक रूप में समीपता, घनिष्ठता, मित्रता का बन्धन सृष्ट होगा और तुम लोग, अपने बीच, एक प्रकार के भ्रातृत्व का, अर्थात् एक प्रकार के सच्चे परिवार का निर्माण करोगे। तुम लोग अब एक साथ इसलिए हो कि तुम एक-दूसरे के समीप हो, तुम एक साथ इसलिए हो कि तुममें एक ही प्रकार की अभीप्सा है, तुम एक साथ इसलिए हो कि तुम जीवन में एक ही लक्ष्य की सृष्टि करना चाहते हो; बातचीत करते समय तुम एक-दूसरे को समझते हो, जब कोई बात कही जाती है तो उस पर वाद-विवाद करने की तुम्हें कोई आवश्यकता नहीं होती और तुम एक प्रकार की आन्तरिक समस्वरता में रहते हो। यही है सच्चा परिवार, यही है अभीप्सा का परिवार, आध्यात्मिक रुजहानों का परिवार।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ४, पृ. ३०८

*श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ*

**सामूहिक सामञ्जस्य**

*सामूहिक सामञ्जस्य का कार्य 'भागवत चेतना' ने अपने हाथ में ले लिया है; केवल इसी में इसे सिद्ध करने की शक्ति है।*

**कृतज्ञता, उदारता, सामञ्जस्य**

सभी गतियों में जो शायद सबसे अधिक हर्षानन्द प्रदान करती है—अमिश्रित हर्ष, जो अहंकार से दूषित नहीं होती, वह है कृतज्ञता की सहज भावना। यह बहुत विशेष वस्तु है। यह प्रेम नहीं है, यह आत्म-दान नहीं है। यह ऐसा हर्ष है जो व्यक्ति को लबालब भर देता है। लबालब। यह बहुत ही विशेष स्पन्दन होता है, इसके जैसा और कोई स्पन्दन नहीं होता। यह ऐसी चीज़ है जो तुम्हें विशाल बना देती है, तुम्हें भर देती है, कितना ऊर्जस्वी होता है यह स्पन्दन! मनुष्य की चेतना की पहुँच में जितनी भी क्रियाएँ हैं, यह निश्चित रूप से ऐसी है जो तुम्हें तुम्हारे अहंकार से खींच कर अधिकाधिक बाहर निकाल देती है... जब तुम इस स्पन्दन की पवित्रता में प्रवेश करते हो तब तुरन्त पहचान लेते हो कि इसके अन्दर वही समान स्पन्दन है जो 'प्रेम' में होता है : यह किसी भी दिशा में सीमित नहीं होता... अन्ततः, कृतज्ञता तथा परम प्रेम के बीच का भेद बहुत ही कम है।

*एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से* *२१ दिसम्बर १९६३*

कभी-कभी, जब हम कोई उदारतापूर्ण कार्य देखते हैं, कोई असामान्य बात सुनते हैं, जब हम वीरता, उदारता या आत्मा की भव्यता का निरीक्षण करते हैं, किसी ऐसे व्यक्ति से मिलते हैं जो एक विशेष योग्यता प्रदर्शित करता है या किसी असाधारण तथा सुन्दर तरीक़े से काम करता है तो उस समय एक प्रकार का उत्साह या आदर-भाव या कृतज्ञता होती है जो एकाएक सत्ता में जग जाती है और एक स्थिति की ओर, चेतना की एक नयी स्थिति, एक ज्योति, एक प्रकार की उष्णता, एक प्रकार के हर्ष की ओर दरवाज़ा खोल देती है जिन्हें हम पहले नहीं जानते थे। यह भी मार्गदर्शक सूत्र को पकड़ने का एक तरीक़ा है। इसके हज़ारों तरीक़े हैं, हमें बस जाग्रत् रहना और निगरानी रखनी चाहिये। **'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ८, पृ. ४८१-८२

मैंने ऐसे लोग देखे हैं जिन्हें, हम कह सकते हैं, किसी चीज़ का कोई ज्ञान न था, जो शायद ही कुछ पढ़े-लिखे थे, जिनके मानस बिलकुल सामान्य प्रकार के थे, और जिनमें कृतज्ञता की, ऊष्मा की यह क्षमता थी जो अपने-आपको दे देती है, समझती है, और कृतज्ञ होती है।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ७, पृ. ४६०

*श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ*

**उदारता**

*स्वयं को दे देती है, बिना किसी सौदेबाज़ी के स्वयं को दे देती है।*

हिन्दी—गुलमेंहदी

हम कहते हैं कि उत्साह की क्षमता एक ऐसी चीज़ है जो तुम्हें तुम्हारे दरिद्र, क्षुद्र, नीच अहंकार से ऊपर उठा देती है; और उदारतापूर्ण कृतज्ञता, कृतज्ञता की उदारता जो अपने-आपको धन्यवाद-ज्ञापन में छोटे-से अहंकार में से बाहर निकाल देती है। अपनी चैत्य सत्ता में भगवान् के साथ सम्पर्क पाने के लिए ये दो सबसे अधिक शक्तिशाली उत्तोलक हैं। यह चैत्य सत्ता के साथ जोड़ने वाली कड़ी का काम देती है—सबसे अधिक निश्चित कड़ी का।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ७, पृ. ४६१

वास्तव में, यह बहुत ज़रूरी है कि हममें से हर एक संसार के लिए उदाहरण हो। हम मनुष्यों को यह दिखा कर ही कि शाश्वत सत्यों के साथ आन्तरिक लेन-देन के द्वारा अव्यवस्था को समस्वरता में, कष्ट को शान्ति में बदला जा सकता है, उन्हें उस मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित कर सकते हैं जो उन्हें मुक्ति की ओर ले जायेगा।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड २, पृ. १२३

जब हम इस आन्तरिक विधान को सुनने की आदत डाल लेते हैं, उसकी आज्ञा का पालन करते हैं, उसका अनुसरण करते हैं, यह कोशिश करते हैं कि वह हमारे जीवन का अधिकाधिक पथ-प्रदर्शन करे, तब हम अपने चारों ओर सत्य का, शान्ति का, सामञ्जस्य का वातावरण पैदा कर लेते हैं, जो स्वाभाविक रूप से परिस्थितियों और रूपों पर प्रतिक्रिया करता है, या यह कहें कि हम जिस वातावरण में रहते हैं उसका सर्जन करते हैं। जब हम न्यायपरता, सत्य, सामञ्जस्य, करुणा, समझदारी, सम्पूर्ण सद्भावना की सत्ता बन जाते हैं तब यह आन्तरिक मनोभाव जितना सच्चा और सम्पूर्ण होगा उतना ही अधिक बाहरी परिस्थितियों पर प्रतिक्रिया करेगा—यह ज़रूरी नहीं है कि वह जीवन की कठिनाइयों को कम करे, लेकिन वह इन कठिनाइयों को एक नया अर्थ दे देता है और जिसके कारण तुम उनका सामना एक नयी शक्ति और नये ज्ञान से कर सकते हो। जब कि मनुष्य, वह मनुष्य जो अपने आवेगों का अनुसरण करता है, जो अपनी कामनाओं की आज्ञा मानता है, जिसे नैतिक संकोच बहुत कम परेशान करता है, जो पूर्ण कटुता में जीना शुरू करता है, जो अपने जीवन का दूसरों के ऊपर जो प्रभाव हो सकता है और अपने कार्यों के कम-ज़्यादा अशुभ परिणामों का मज़ाक उड़ाता है, ऐसा व्यक्ति एक कुरूपता का, स्वार्थपरता का, संघर्ष का, दुर्भावना का वातावरण उत्पन्न करता है जो स्वाभाविक रूप से उसकी चेतना पर अधिकाधिक कार्य करने लगता है और उसके अस्तित्व में एक कटुता भर देता है, और अन्त में जीवन एक अविरत यातना बन जाता है।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ३, पृ. ३१५-१६

***मन और अन्तरात्मा का सामञ्जस्य और सौन्दर्य, विचारों और भावनाओं का सामञ्जस्य और सौन्दर्य, हर बाहरी गतिविधि और क्रिया में सामञ्जस्य और सौन्दर्य, जीवन और उसके परिवेश का सामञ्जस्य और सौन्दर्य—यही है महालक्ष्मी की माँग।...***

***जहाँ प्रेम और सौन्दर्य नहीं हैं या जहाँ वे जन्म लेने से इन्कार करते हैं, ऐसे स्थान पर महालक्ष्मी नहीं आतीं।***

*CWSA* ***खण्ड ३२, पृ. २१***

हमें अपनी सत्ता के प्रत्येक पल और प्रत्येक गति को सनातन देव के प्रति एक सतत और भक्तियुक्त आत्मदान में परिणत करना होगा। अपने सभी कर्मों को, छोटे-से-छोटे और अत्यन्त साधारण एवं तुच्छ कर्मों को तथा बड़े-से-बड़े और अत्यन्त असाधारण एवं श्रेष्ठ कर्मों को, सभी को एकसमान, ईश्वरार्पण-भाव से करना होगा। हमारी व्यष्टिभावापन्न प्रकृति को एक ऐसी बाह्य तथा आन्तर क्रिया की अखण्ड चेतना में निवास करना होगा जो हमसे परे की, और अहं से महान् किसी वस्तु के प्रति निवेदित हो। यह कोई महत्त्व की बात नहीं कि हवि किस वस्तु की है और उसे हम किसकी भेंट चढ़ाते हैं, पर भेंट करते समय ऐसी चेतना होनी चाहिये कि सभी सत्ताओं में विद्यमान एकमेव दिव्य परम सत्ता को ही हम यह वस्तु भेंट कर रहे हैं।

CWSA खण्ड २३, पृ. १११

## कुलीनता

*(एक साधक के लिए प्रार्थना)*

प्रभो! मुझे क्रोध, कृतघ्नता और मूर्खताभरे दर्प से मुक्त कर दे। मुझे शान्त, नम्र और कोमल बना। वर दे कि मैं अपने कार्य में और अपनी समस्त क्रिया में तेरे ही भागवत नियन्त्रण का अनुभव करूँ।

CWSA खण्ड ३५, पृ. ८४३

हमें बड़े विनीत भाव से अगणित तत्त्वों में से कुछ को गूँधने और शुद्ध बनाने के छोटे-से-छोटे अवसर का लाभ उठाना चाहिये ताकि उनमें से कुछ को हम सुनम्य और निर्वैयक्तिक बना सकें, उन्हें अपने-आपको भूलना, आत्म-त्याग, भक्ति, कोमलता और सौम्यता सिखा सकें। और जब सत्ता के ये सब तरीक़े अभ्यासगत हो जाएँ तो मनन-चिन्तन में भाग लेने के लिए और तेरे साथ परम 'एकाग्रता' में एक होने के लिए वे तैयार होते हैं।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १, पृ. १२

*श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ*

**कुलीनता (मटर)**

*हमेशा रमणीय होती है और हर्ष प्रदान करना चाहती है*

*श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ*

**कृतज्ञता**

*तुम्हीं सभी बन्द द्वारों को खोल देती और रक्षा करने वाली भागवत कृपा को गभीर रूप से प्रवेश करने देती हो।*

अंग्रेज़ी—Morning Glory

**'पुरोधा' :**

# दैनन्दिनी

**नवम्बर**

१. समस्त रोग विरोधी शक्तियों के आक्रमण हैं। ये हमारे धैर्य और हमारी सहनशीलता को परखने और हमारी श्रद्धा को भंग करने के उनके प्रयत्न हैं। प्रत्युत्तर में हमें अधिक धैर्य, सहनशीलता और श्रद्धा का परिचय देना चाहिये। तब बुरी तरह पराजित होकर वे शक्तियाँ भाग जाती हैं और यह सत्य की एक विजय होती है।

२. धीरता और सहनशीलता जितनी अधिक होंगी, भागवत शक्ति और भागवत प्रेम उतने ही अधिक हमारे साथ होंगे और विजय का आनन्द भी उतना ही अधिक होगा।

३. कुछ लोगों की अभीप्सा इतनी सतत और सद्‌भावना इतनी समग्र होती है कि उनके साथ जो कुछ भी घटित होता है उस सबको वे अपनी प्रगति के लिए भेजी गयी परीक्षा के रूप में ले लेते हैं... इस प्रकार के कई लोगों को मैं जानती हूँ, वे बहुत सुन्दरता से प्रगति के पथ पर निरन्तर बढ़ते रहे।

४. बीमार पड़ने पर व्यक्ति की सच्ची वृत्ति यह होनी चाहिये कि वह कहे, "कहीं कोई ऐसी बात है जो ठीक नहीं है, मैं यह देखना चाहता हूँ कि यह चीज़ क्या है।" तुम्हें यह कभी न सोचना चाहिये कि भगवान् ने जान-बूझकर तुम्हें बीमारी दी है; क्योंकि, अगर भगवान् ऐसे हैं तब तो वे बड़े अनिष्टकारी होंगे।

५. सन्देह, निरुत्साह, विश्वास का अभाव, निजी स्वार्थ के लिए भगवान् की ओर से मुँह फेर कर आत्मकेन्द्रित होना—ये हैं वे चीज़ें जो तुम्हें ज्योति तथा दिव्य शक्ति से अलग कर देती और तुम्हें बाहरी आक्रमण के प्रति खोल देती हैं।

६. शुभचिन्तक बनो और तुम समस्त कष्टों से मुक्ति पा लोगे, सदा सन्तुष्ट और प्रसन्न रहो और तुम अपनी शान्त प्रसन्नता को चारों ओर फैला दोगे।

७. यह बात बहुत ध्यान देने-योग्य है कि पाचन-सम्बन्धी क्रियाएँ

दोषदर्शी, निष्ठुर और चिड़चिड़ी मनोवृत्ति और कठोर आलोचना के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होती हैं।... इसका इलाज केवल एक ही है : स्वेच्छापूर्वक इस मनोवृत्ति से बाहर निकल आओ, इसे पूरी तरह से अस्वीकार करो और चाहे जो भी हो, एक सतत अनुशासन और संकल्प द्वारा पूर्ण दयालुता की भावना को निरन्तर बनाये रखो। ऐसा करने का प्रयत्न करो और तुम देखोगे कि तुम पहले से कहीं अधिक स्वस्थ हो गये हो।

८. रुग्णावस्था में भागवत शक्ति को नीचे उतारने की कोशिश करना न भूलो। क्योंकि कोई भी बीमारी प्रभु की शान्ति का प्रतिरोध नहीं कर सकती; यहाँ तक कि स्मरण करने और कोशिश करने से भी आराम मिलता है।

९. जितनी अधिक की हम कल्पना कर सकते हैं शरीर उससे कहीं अधिक सह सकता है, बशर्ते कि पीड़ा के साथ भय और चिन्ता न आ जुड़ें। अगर इस मानसिक असर को हटा दिया जाये और शरीर को अपने-आप पर छोड़ दिया जाये, अर्थात् 'क्या हो जायेगा' इस तरह का भय, आशंका, दुश्चिन्ता, व्याकुलता इत्यादि उसमें न आने दी जायें तो शरीर बहुत अधिक सह सकता है।

१०. शरीर के चारों तरफ़ एक प्रकार का रक्षाकवच है जिसे हम स्नायविक आवरण कहते हैं—यदि यह सशक्त बना रहता है और रोगशक्ति को अन्दर नहीं आने देता, तो हैज़े या दूसरी बीमारियों के बीच भी व्यक्ति स्वस्थ बना रह सकता है—पर यदि आवरण में छेद हो या यह दुर्बल हो तो रोग घुस सकता है।

११. सब बातों में—आध्यात्मिक जीवन बिताना हो या रोग दूर करना हो, सभी बातों में—व्यक्ति के लिए शान्त रहना आवश्यक है।

१२. स्वास्थ्य गहरी समस्वरता की बाह्य अभिव्यक्ति है, इस पर तो गर्व होना चाहिये, इसका तिरस्कार ठीक नहीं।

१३. एक अच्छा सन्तुलन बनाये रखने तथा ग्रहण की गयी वस्तु को आत्मसात् करने के लिए व्यक्ति को बहुत शान्त, बहुत स्थिर होना चाहिये; उसका आधार सुदृढ़ और स्वास्थ्य अच्छा होना चाहिये। आधार ख़ूब सुदृढ़ हो यह बहुत आवश्यक है।

१४. हमारी अन्तस्थ आत्मा ही एकमात्र सर्वसमर्थ चिकित्सक है और उसके प्रति शरीर का समर्पण ही एकमात्र सच्ची रामबाण औषधि है।

१५. नियन्त्रण के बिना कोई समुचित कार्य सम्भव नहीं है। नियन्त्रण के बिना समुचित जीवन सम्भव नहीं है। और सबसे बढ़ कर, नियन्त्रण के बिना कोई साधना नहीं है।

१६. अत्यन्त तीव्र शारीरिक कष्ट भी, यदि इसका शान्ति और स्थिरता के साथ सामना किया जाये तो, कम हो जाता और सहज बन जाता है। यहाँ तक कि यन्त्रणा में भी व्यक्ति भगवान् पर निर्भर रह सकता है और भगवान् यन्त्रणा को आनन्द में बदल देते हैं।

१७. सदा दयालु बनो, कड़वी आलोचना से बाहर निकल आओ, सब वस्तुओं में बुराई को न देखो, कुछ और न देख कर अपने-आपको हठपूर्वक केवल भागवत कृपा की महान् और करुणामयी उपस्थिति को ही देखने को विवश करो और तब तुम देखोगे कि अचञ्चल आनन्द का, शान्त विश्वास और ज्योतिपूर्ण आशा का वायुमण्डल तुम्हारे अन्दर ही नहीं बल्कि तुम्हारे चारों ओर भी अधिकाधिक फैल रहा है। तुम अपने-आपको केवल शान्त और प्रसन्न ही नहीं अनुभव करोगे, बल्कि तुम्हारे शरीर के बहुत से विकार भी दूर हो जायेंगे।

१८. अपनी सभी गतिविधियों को, केवल मानसिक क्रियाओं को ही नहीं, हर विचार और भावना को, एकदम बाहरी मामूली क्रियाओं—जैसे भोजन—को भी भगवान् के अर्पित करते रहो। जब तुम खाओ तो यह अनुभव करो कि स्वयं भगवान् तुम्हारे द्वारा खा रहे हैं।

१९. सन्तुलन रखने के लिए सभी भागों को एक साथ प्रगति करनी चाहिये। एक भाग में ज्योति लाने के प्रयास में तुम्हें दूसरे भाग को अँधेरे में न छोड़ देना चाहिये। तुम्हें कहीं भी अँधेरे कोने न छोड़ने चाहियें।

२०. तुम वन के एकान्त में जो करते हो उसका नहीं, जीवन-संग्राम में जो करते हो उसका महत्त्व है। हर चीज़ "साधना" का अंग हो सकती है, यह आन्तरिक वृत्ति पर निर्भर होता है।

२१. हम चाहे जो करें, हमें सदा अपने लक्ष्य को याद रखना चाहिये।

२२. बस एक ही चीज़ है जो महत्त्वपूर्ण है, वह है भगवान् को खोजना और पा लेना। बाक़ी सब शून्य है।

२३. हममें से प्रत्येक व्यक्ति को एक भूमिका निभानी है, एक कार्य करना है, प्रत्येक का अपना एक स्थान है जिसे केवल वही ग्रहण कर सकता है।

२४. जब तक हमें यह नहीं मालूम हो जाता कि हमारे लिए कौन-सा विशेष कार्य नियत है हमें कोई ऐसा सामयिक कार्य ढूँढ़ लेना चाहिये जो हमारी वर्तमान क्षमताओं तथा सदिच्छा को श्रेष्ठतम रूप में प्रकट कर सके।

२५. प्रत्येक वस्तु पर अपने सम्बन्ध से विचार करने की आदत जितनी हम छोड़ देंगे, पृथ्वी और मानवमात्र के प्रति जितने अधिक पूर्ण रूप में और विशालतर प्रेम के साथ स्वयं को देना जानेंगे, उतना ही हम देखेंगे कि हमारे क्षितिज विस्तृत होते जा रहे हैं, हमारे कर्तव्य बढ़ते जा रहे हैं और उनमें अधिक स्पष्टता आ रही है।

२६. संसार, जैसा कि वह है, क्षुद्रता और अन्धकार से भरा है। केवल भगवान् ही प्रकाश, विशालता, सत्य और करुणा हैं। अतः भगवान् में ही शरण लो और संसार की क्षुद्रता की परवाह न करो, वह तुम्हें व्याकुल न कर पाये। अपने अन्दर केवल भगवान् की उपस्थिति को उसकी शान्ति और नीरवता के साथ बनाये रखो।

२७. जो कुछ भी हम करें, दिखावे के लिए न करें। जब हम यश और सम्मान की, अपने समकालीनों से प्रशंसा की इच्छा करने लगते हैं तो हम शीघ्र ही उनकी ओर झुकने को बाध्य हो जाते हैं, जब हम आत्म-प्रशंसा के अवसर ढूँढ़ने लगते हैं तो हम सहज ही अपने-आपको वैसा मानने लगते हैं जैसे हम वास्तव में हैं नहीं, और यह चीज़ हमारे अन्दर के आदर्श को सबसे अधिक आच्छन्न करने वाली होती है।

२८. अमर होने का अर्थ है, अपनी सत्ता, चेतना और आनन्द में अनन्त होना; क्योंकि आत्मा अनन्त है और जो कुछ सान्त है वह उस आत्मा की अनन्तता के द्वारा ही जीवन धारण करता है।

२९. अतिमानव बनने का अर्थ है, दिव्य जीवन यापन करना, देवता बन जाना; क्योंकि देवतागण भगवान् की शक्तियाँ हैं।
मनुष्यों में भगवान् की एक शक्ति बन कर रहो।

३०. अपने हृदय को हमेशा ख़ुश रखने के लिए उसे हमेशा कृतज्ञता से सराबोर रखो। कृतज्ञता भगवान् की ओर जाने का निश्चिततम पथ है।

# भोला, उर्फ़...!

युग बीत गया अपनी इस कहानी को लिखे... दोबारा हाथ लगी तो अपने नये पाठकों तक पहुँचानी तो थी ही... सं.)

"भोला!... अरे, ओ भोला!... अरे, सुनता है? चलना है या नहीं आज!... या फिर से वही रोना लेकर बैठ गया?" चिल्लाता हुआ झुँझलाता कलुआ भोला की टूटी-फूटी झोंपड़ी के द्वार पर आ पहुँचा, लेकिन वहाँ भोला का नामोनिशान भी न था।

"उफ़! क्या तंग कर मारा है इसने! कहाँ जा मरा यह? होगा वहीं उस पेड़ के नीचे। शायद अब भी कल का चरखा चला रहा हो। मैं तो बाज़ आया इस लड़के से"—कहता हुआ कलुआ पेड़ की ओर चल पड़ा। वहाँ जाकर देखता क्या है, भोला सिर झुकाये बैठा सिसकियाँ ले रहा है। खीज में कलुआ बोला, "अरे चलना भी है या नहीं आज काम पर या यहीं बैठा-बैठा उसकी तेरहीं करता रहेगा?"

भोला का मौन टूटा तो कलुए ने फिर कहा, "अरे, कल तेरी जेब कट गयी थी, आज काम पर न गया तो खायेगा क्या, अपना सिर?"

भोला फिर भी टस-से-मस न हुआ। कलुआ उसके पास जा पहुँचा और उसका कन्धा ज़ोर से झकझोरते हुए बोला, "अरे, कर क्या रहा है यहाँ बैठा-बैठा? कुछ बोल भी तो। मुँह में घुघनी किसलिए भर रखी है?" आँखों में आँसू-भरे भोला बोला, "भैया, ग़ुस्सा न करो, हम पराइसचित कर रहे हैं।"

कलुआ ने झिड़कते हुए कहा, "धत्तेरे पराइसचित की! चल, सीधी तरह काम पर। अरे, आजकल काम मुश्किल से मिलता है। ऐसे नखरे करेगा तो बस हो लिया। चल, सीधी तरह से।" लेकिन भोला फिर भी न हिला।

शायद मुझे बात शुरू से सुनानी चाहिये। उस साल गर्मी की छुट्टियाँ थीं। मैं घर गयी तो पिताजी ने कहा, "बेटी, तू तो मेरा दाहिना हाथ है। अब तू काफ़ी बड़ी और समझदार हो गयी है। मुझे एक तेरा ही सहारा है। मैं एक घर बनवा रहा हूँ, मुझे तो देखभाल करने के लिए समय नहीं मिलता, तू यह ज़िम्मेदारी अपने कन्धे पर ले ले तो मैं निश्चिन्त हो जाऊँ और तेरी छुट्टियों का भी सदुपयोग हो जाये।" मैं ना कैसे कहती? उनकी

बातों को मैंने हमेशा सिर-आँखों पर लेना सीखा है।

तो इसी सिलसिले में भोला, कालू आदि मज़दूरों के साथ मेरा अच्छा-ख़ासा परिचय हो गया। मैं जहाँ मज़दूरों से काम लेने में ढील न करती थी वहाँ उनके साथ मानवतापूर्ण व्यवहार करने में भी पीछे न रहती थी। परिणाम यह कि काम के बाद वे मुझसे घर के बच्चों की तरह व्यवहार करते थे। हममें आपस में हँसी-मज़ाक भी हो जाया करता था।

उस दिन मैं हाज़िरी ले रही थी। भोला का नाम पुकारा तो कोई उत्तर न मिला। मैंने आँख उठा कर देखा तो कलुआ ने कहा, "आज वह न आयेगा।" मैंने पूछा, "क्यों?" तो उसने सिर नीचा कर लिया। मैंने उस समय बात आगे न बढ़ायी, पर बारह-तेरह वर्ष के भोला का सलोना मुखड़ा मेरी आँखों के सामने नाचता रहा। उसका खिले कमल का-सा चेहरा, बड़ी-बड़ी झील-सी आँखें, लम्बे घुँघराले बाल और बालोचित स्वभाव, सबने मिल कर मुझे अपना काम न करने दिया। मुझे याद आया वह दिन जब मैंने उसके मैले, चीकट कपड़ों पर व्यंग्य कसा था। उसने मानों मेरी चुनौती स्वीकार करते हुए कहा, "अच्छा, बीबीजी, देख लीजिये, कल मेरे कपड़े आपसे भी ज़्यादा झग-झग करते हुए होंगे।" मैं उत्सुकता से दूसरे दिन की राह देखने लगी। पर यह क्या, वह आया तो ऐसा लग रहा था मानों अभी कीचड़ में लोट कर आया हो। मैंने हँसते हुए कहा, "क्या हुआ? यह कौन-सा साबुन लगाया है तूने जो कपड़े इतने झग-झग हो गये?" रुँआँसे-से भोला ने उत्तर दिया, "मुझे क्या मालूम था कि ऐसी गड़बड़ हो जायेगी! मेरे पास एक ही तो कुरता है, उसे हर रोज़ शाम को पास के पोखर के पानी में फींच लाया करता था। कल आपने ज़्यादा साफ़ करने के लिए कहा था तो मुझे याद हो आयी कि माँ बरतनों को राख से माँजा करती थीं तो वे चमक उठते थे। मैंने भी यही किया तो यह हालत हो गयी।" यह कहते-कहते भोला फूट-फूट कर रोने लगा। मैं उसकी बात पर हँस न सकी। उसे कपड़ा ख़राब होने से भी ज़्यादा दुःख इस बात का था कि उसकी माँ की तरक़ीब असफल निकली। उसे ढाढ़स बँधाने में मुझे काफ़ी समय लग गया, लेकिन उस दिन से भोला ने मेरे हृदय में अपना स्थान बना लिया। वह ठीक समय काम पर आता था। अच्छे-से-अच्छा प्रयास करता था, बिना बोले-चाले अपना काम करता रहता था। हाँ, काम

के बाद कभी-कभी थोड़ी चुहल कर लेता था।

आज वह काम पर नहीं आया तो मुझे उसकी वे सब बातें रह-रह कर याद आ रही थीं। मैं सोच रही थी, "कहीं वह बीमार तो नहीं हो गया, कहीं उसके किसी को कुछ हो तो नहीं गया?"

किसी काम में मन न लगा तो मैं कलुआ की खोज में निकल पड़ी। वह काम करने की जगह बैठा-बैठा ऊँघ रहा था। मेरी आहट पाते ही ऐसा चौंक पड़ा मानों बिजली का तार छू गया हो। वह लगा सफ़ाई देने, पर मैंने सुनी-अनसुनी करके कहा, "भोला को क्या हो गया है?" उसकी जान में जान आ गयी। उसने कहा, "जी, वह बैठा कल का पराइसचित कर रहा है।" कलुआ ने देखा कि मैं उसकी बात नहीं समझ पायी तो बोला, "कल हम लोग मिट्टी ढो रहे थे। उसने तसला फेंका तो एक गिलहरी उसके नीचे आकर मर गयी। बस तभी से रो-पीट रहा है। कल सारे दिन कुछ नहीं खाया-पिया। आज भी बस उसी तरह बैठा है। मैंने बहुतेरा समझाया पर वह किसकी सुनता है?"

कालू की बातें सुन कर मेरी आँखों के आगे एक दृश्य घूम गया। एक दिन अपने काम में व्यस्त होने के कारण मैं उस तरफ़ न जा सकी थी। भोला अपना काम पूरा करके, चुपके-से मेरे यहाँ आया, और धीरे-से मेरी साड़ी का पल्ला खींचता हुआ बैठ गया। मैंने चौंक कर आँख उठायी तो उसकी हँसी की घण्टियाँ बज उठीं। वह बोला, "देखा, इस छोटी-सी गिलहरी ने इतने बड़े शेर को कैसे डरा दिया!" कभी-कभी वह बादलों में ऊँट और बकरी, घोड़ा और हाथी और न जाने किस-किस की कल्पना करके ख़ुश होता और मुझे ख़ुश करता था। एक गिलहरी की हत्या में उस भावुक हृदय ने न जाने क्या-क्या सोच लिया होगा। कालू के लिए इस घटना का भले कुछ महत्त्व नहीं, पर भोला के लिए यह अवश्य बहुत बड़ी बात हो गयी।

मैंने कालू की बात वहीं काट कर उससे कहा, "चलो, मुझे भोला के घर ले चलो।" मेरी बात सुन कर सभी मज़दूर भौचक्के रह गये। मैंने थोड़ा-सा खाना अपने साथ लिया और भोला के घर की ओर चल पड़ी। कश्मीर के लिए कहा गया है कि अगर धरती पर कोई स्वर्ग है तो बस यही है। यही है। मैं इस बस्ती में पहली बार पाँव रख रही थी और मन-

ही-मन कहती जाती थी, "धरती पर अगर कोई नरक है तो बस यही है। यही है!" उफ़! उसकी याद करके भी उबकाई आती है। पर मैं दाँत भींचे, अपने-आपको सँभालती हुई आगे बढ़ती गयी। ओह, मेरा भावुक कवि-हृदय भोला, ऐसी जगह कैसे रह सकता है? उसे यहाँ कौन-सी कठिनाई न होती होगी! मैं भोला के द्वार पर जा पहुँची। वह खोया-सा आँखें मूँदे बैठा था। ओंठ तो हिल रहे थे पर कोई शब्द न सुनायी देता था। मैं उसके पास वहीं बैठ गयी। हौले से उसके कन्धे पर हाथ रखा। वह एकदम चौंक कर खड़ा हो गया। और साथ ही उसके मुँह से निकला, "अरे, आप यहाँ!" मैंने बड़े स्नेह के साथ कहा, "आज तुम काम पर नहीं आये तो मैं देखने चली आयी।" वह कुछ बोलना चाहता था पर शब्द मुँह से न निकल रहे थे। उसने मेरे दोनों घुटने पकड़ लिये और साथ ही उसकी घिग्घी बँध गयी। काफ़ी रो लेने के बाद वह ज़रा हलका हुआ तो मैंने अपने थैले में से कुछ मिठाई निकाल कर उसके आगे धर दी और कहा, "लो, पहले यह खा लो, फिर चलो मेरे साथ काम पर।" वह बुक्का मार कर रो पड़ा। और जब ज़रा शान्त हुआ तो बोला, "आपको देख कर मुझे अपनी माँ याद आ रही हैं। उसके सिवाय किसी से मुझे लाड़ नहीं मिला। आप ही न जाने क्यों इतनी कृपा करती हैं। मैं अपनी माँ के लिए बहुत रोया करता था। आपने बड़ी हद तक मेरी उस कसर को पूरा किया है। मैं यही सोच-सोच कर दुःखी हो रहा हूँ कि मैंने उस गिलहरी के बच्चे को मार कर जिसे निपूती बना दिया है उसकी गोद कौन हरी करेगा? वह अपने दुःख को हमारी भाषा में व्यक्त नहीं कर सकती। वह मुझसे बदला नहीं ले सकती। इसी कारण तो उसका दर्द और भी ज़्यादा दुःखद हो उठता है।"

मैंने अवश हो भोला को अंक में भर लिया। आँखों में आँसुओं की बाढ़ उमड़ आयी थी। लेकिन ये ख़ुशी के आँसू थे। दलदल में एक पूर्ण, स्वच्छ, सुन्दर कमल की प्राप्ति की ख़ुशी के। उस नरक जैसी बस्ती में स्वर्ग के अंकुर फूटने के आनन्द के।

मैंने देखा, दरवाज़े पर खड़ा कालू भी अपनी गीली आँखें पोंछ रहा था।

लौटते वक़्त, लेशमात्र भी न बदली हुई वह बस्ती मुझे स्वर्ग का अंश प्रतीत हो रही थी। उसमें एक देवदूत जो उतर आया था।

'पुरोधा', अक्तूबर, १९७८ से —वन्दना

# प्रफुल्लता

किसी वर्षाप्रधान देश के एक बड़े शहर में एक दिन तीसरे पहर मैंने सात-आठ गाड़ियाँ बच्चों से भरी देखीं। उन्हें सवेरे ही गाँवों की ओर खेतों में खेल-कूद के लिए ले जाया जा रहा था, पर वर्षा के कारण उन्हें समय से पहले ही वापस लौटना पड़ा।

फिर भी बच्चे हँस रहे थे, गा रहे थे और आने-जाने वालों की ओर सोल्लास हाथ हिला रहे थे।

इस निराशा-भरे मौसम में भी उन्होंने अपनी प्रसन्नता बनाये रखी थी। एक उदास होता तो दूसरे अपने गानों से उसे प्रफुल्लित कर देते। जल्दी-जल्दी पास से निकलते राहगीर जब उनकी खिलखिलाहट सुनते तो उस क्षण उन्हें ऐसा प्रतीत होता मानों आसमान की काली घटा कुछ कम गहरी हो गयी हो।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड २, पृ. २११

**अग्निशिखा**

**श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका**

वार्षिक शुल्क : एक वर्ष—२००रु.; तीन वर्ष—५८०रु.; पाँच वर्ष—९६०रु.

संस्थापक : श्रीअरविन्द सोसायटी

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी

प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तैं स्ट्रीट, पुदुच्चेरी ६०५००१

मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू,
पुदुच्चेरी ६०५००१, भारत

**सम्पादिका : वन्दना**

Registered with the Registrar of Newspapers for India: No. 18135/70

दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८

Email: info@aurosociety.org

Website: www. aurosociety.org

सभी धर्मशास्त्र मनुष्यों को प्रगति कराने के लिए हैं, उन सबमें हमेशा यही कहा गया है कि जो तुम्हें तुम्हारे दोष दिखायें उनके प्रति तुम्हें बहुत कृतज्ञ होना चाहिये और उनके साथ सत्संग करने की कोशिश करनी चाहिये; ... अगर कोई तुम्हें दोष दिखाये तो मानों तुम्हें कोई ख़ज़ाना दिखा रहा है; यानी, हर बार जब हम अपने अन्दर दोष, अक्षमताएँ, समझ की कमियाँ, कमजोरियाँ, कपट और वे सब चीज़ें देखें जो हमें प्रगति करने से रोकती हैं तो मानों हम एक अद्‌भुत ख़ज़ाना पा जाते हैं।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ३, पृ. २४१-४२

*सभी के प्रति और सभी की ओर से सद्‌भावना शान्ति और सामञ्जस्य की नींव है।*

**—श्रीमाँ**

साभारः
फूलश्री देवड़ा सेवा कोश
रजनीगन्धा, 13 ई
25, बालीगंज पार्क, कोलकता – 700019

Date of Publication: 1st November 2021
Rs. 30 (Monthly)
Registered: PY/47/2021-23
RNI No. 18135/70

**मुखपृष्ठ का चित्रः**
**सद्भावना**
*देखने में विनम्र, कोई दिखावा नहीं करती, लेकिन हमेशा उपयोगी होने के लिए तत्पर रहती है।*
*(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)*
वानस्पतिक नामः Lobularia maritima
सामान्य अंग्रेज़ी नामः Sweet Alison, Sweet Alyssum